तथागत

दिनकर

तथागत

[गौतमबुद्ध के जीवनक्रम पर आधारित मौलिक नाटक]

ओंकारनाथ दिनकर

कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर

तथागत—नाटक
ओंकारनाथ दिनकर
अजमेर।

प्रकाशक :
कृष्णा ब्रदर्स
अजमेर।

मूल्य २-७५

१९६९

मुद्रक :
एच. सी. कपूर
टाइम्स प्रिंटिंग प्रेस
ब्रह्मपुरी अजमेर।

हिन्दी नाटक का विकास

विश्व के प्राय: सभी देशों में नाटक के प्रारम्भिक रूप का उदय किसी न किसी धार्मिक भावना अथवा चेतना के परिणाम स्वरूप हुआ है। धार्मिक आवेश अथवा वीरपूजा प्राणिमात्र के हृदय में संचरित होती रहती है। शनैः शनैः वही भावना और धारणा नाटक का रूप धारण ले लेती है।

भारतेन्दु-युग से पूर्व नाटक रामलीला, रासलीला, नौटंकी आदि का रूप लिये हुए था. यद्यपि ये रंगमंच पर खेले जाते हैं, इनका प्रदर्शन होता है किन्तु इनमें नाटकीय तत्त्वों का अभाव रहता है। भारत में संस्कृत नाटकों की अविरल धारा भी मुसलमानी शासन आजाने से रुक-सी गई। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से भी हिन्दी नाटक का विकसित रूप एक साथ हमारे सामने नहीं आया। विद्वानों में जागृति अवश्य बनी रही कि वे नाटक को कलापूर्ण एवं उत्कृष्ट बनायें। प्रयत्न भी हुए सफल-असफल दोनों ही।

आरम्भकालीन नाटक

सबसे पहले हम विद्यापति के दो नाटक—'रुक्मिणी हरण' और 'पारिजात हरण' देखते हैं। ये दोनों कृतियाँ चौदहवीं शताब्दी की हैं। उसके पश्चात् सत्रहवीं शती में कृष्णजीवन ने 'करुणाभरण' श्रीकृष्ण की जीवन-लीलाओं को लेकर नाटक लिखा, उसी शताब्दी में 'हनुमन्नाटक' की रचना हृदयराम ने की। 'प्रबोध चन्द्रोदय' नाटक के कर्त्ता कृष्ण मिश्र हैं। सत्रहवीं शती में इस नाटक का अनुवाद जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह ने किया। अठाहरवीं शताब्दी में ब्रजवासीदास ने भी इस नाटक का पद्य में अनुवाद किया। सन् १६८० में नेवाज कवि ने शाहजादा आजमशाह के आदेश से ब्रजभाषा-पद्य में शकुन्तला लिखा। इसी शती की एक अन्य रचना 'देवमाया-प्रपंच नाटक' भी है, यह नाटक देव का लिखा हुआ है। इसके पश्चात् 'रामलीला बिहार नाटक' लक्ष्मण शरण का तथा रींवा-नरेश विश्वनाथसिंह का 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक हैं। भारतेन्दुबाबू ने इस नाटक को हिन्दी का सर्वप्रथम नाटक माना है।

वास्तव में हिन्दी नाटकों की अविरल परम्परा का उदय १८५९ से होता है। यों अबतक साधारणतः छुट-पुट प्रयोग होते रहते थे। गोकुलचन्द्र कृत 'नहुष' का सृजन इसी वर्ष में हुआ था, इस नाटक में नाटकीय नियमों का पालन विधिवत् हुआ है। १८६१ में राजा लक्ष्मण प्रसादसिंह का शकुन्तला नाटक हमारे सामने आता है। यह शुद्ध हिन्दी में लिखा गया है।

इसी समय साहित्यिक नाटकों के साथ-साथ कुछ रंगमचीय नाटक भी लिखे गये। इनका उद्देश्य जनसाधारण का मनोरंजन मात्र रहा। इस प्रकार के नाटक व्यावसायिक कम्पनियों द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किये जाते रहे। आगा हसन अमानत का 'इन्दर सभा' ऐसा ही नाटक है। यह गीति-नाट्य ही माना जाना चाहिये क्योंकि इसमें दो-तिहाई अंश गीतों से भरा हुआ है।

भारतेन्दु-युग—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य की विविध विधाओं की सेवा की है। उनकी नाटक साहित्य को भी देन उल्लेखनीय है। उनके कुल नाटक अठारह हैं। इनमें 'प्रवास' अपूर्ण है। सत्रह में से सात नाटक अनूदित तथा दस मौलिक हैं। नाटककार भारतेन्दु का सृजनकाल १८६८ से आरम्भ होता है। उन्होंने 'विद्यासुन्दर', 'रत्नावली' तथा 'प्रवास' का सृजन इसी वर्ष में किया। १८७२ में 'पाखण्ड विडम्बना', ७३ में 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' तथा 'धनंजय विजय' लिखे। इसके पश्चात् 'निरन्तर प्रेम जोगिनी', 'सत्य मंजरी', 'विषस्य विषम् औषधम्', 'श्री चन्द्रावली', 'भारत दुर्दशा' लिखे। १८८० में 'नीलदेवी' तथा मर्चेण्ट ऑफ वेनिस के अनुवाद किये।

प्रसाद-युग

भारतेन्दु के बाद प्रमुख कृतित्व स्वर्गीय जयशंकरप्रसाद का हमारे सम्मुख आता है। प्रसाद ने भारतेन्दु द्वारा संस्कृत-परम्पराओं की मुक्ति को बल दिया। प्रसाद ने वास्तव में भारती के मंदिर में दिव्य भेंट चढ़ाई है। इनके नाटक कला, शैली, तकनीकि-दृष्टि सभी प्रकार से सफल और विकासोन्मुख हुए हैं। प्रसाद के नाटकों में साहित्यिक चेतना के दर्शन होते हैं।

प्रसाद के प्रमुख नाटक 'अजातशत्रु', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी', जनमेजय का 'नागयज्ञ,' 'स्कन्दगुप्त,' 'विशाख' आदि हैं। प्रसाद ने अपने नाटकों में गीतों की भरमार की है, यह दोष अनेक आलोचक उन पर आरोपित करते हैं। रंगमंच की दृष्टि से भी उनकी अभिनेयता संदिग्ध मानते हैं, यद्यपि कुछ प्रयोग हो रहे हैं। प्रसाद के बाद हम हरिकृष्ण प्रेमी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामकुमार वर्मा, ओंकारनाथ दिनकर, जगदीशचन्द्र माथुर, वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास आदि को प्रमुख रूप से लेते हैं। प्रेमीजी के नाटकों की मूल प्रेरणा राष्ट्रीय चेतना है। प्रेमीजी ने प्राचीन को अर्वाचीन रूप में प्रस्तुत किया है। प्रेमीजी के नाटक रक्षाबन्धन, आन का मान, सम्वत्सर, भग्न प्राचीर आदि हैं। मिश्रजी के नाटक 'चक्रव्यूह', 'वत्सराज', 'सिन्दूर की होली' आदि हैं। इन्होंने भी पर्याप्त नाटक लिखे हैं किन्तु सामाजिक अधिक। नाटककार के रूप में हम उन्हें प्रतिष्ठित नाटककार मानते हैं।

सेठजी ने ऐतिहासिक और सामाजिक दोनों प्रकार के नाटक दिये हैं। अशोक, हर्ष, सेवापथ, राम से गांधी उनके उल्लेखनीय नाटक हैं। डॉ० वर्मा के नाटक कला और कृपाण तथा नाना फड़नबीस देखने में आये है यद्यपि वर्माजी एकांकीकार के रूप में ही प्रतिष्ठित हैं। ओंकारनाथ दिनकर के नौ ऐतिहासिक नाटक हमारे सामने हैं। उनके नाटकों में संस्कृति और राष्ट्रीयता के दर्शन सुलभ हैं। उनके नारीपात्र तो विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दिनकर पुरातन में अद्यतन के दर्शन करते हैं। राष्ट्रीय भावना, संस्कृति की झलक, दार्शनिकता, तथा वर्त्तमान की समस्याएँ उनके नाटकों में दृष्टव्य हैं।

साथ ही हम उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर, देवराज 'दिनेश' रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' के नाम भी लेने में संकोच नहीं करेंगे। इन नाट्ककारों की नाट्य साहित्य को देन उल्लेखनीय है।

एकांकी—

पूर्ण नाटकों के अतिरिक्त एकांकी नाटकों का सृजन भी हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में प्रशंसनीय रहा है। डॉ० रामकुमार वर्मा तो

एकांकी के जन्मदाता ही माने जाते हैं। एकांकीकारों की नामावली लम्बी है। फिर भी कुछ एकांकीकारों के नाम बताये जाने आवश्यक हैं। डॉ० वर्मा के पश्चात्, अश्क, भट्ट, प्रेमी, जगदीशचन्द्र माथुर, अमृतलाल नागर, धर्मवीर भारती, ओंकारनाथ दिनकर, विष्णु प्रभाकर, भुवनेश्वर, मोहन राकेश, लक्ष्मीनारायणलाल, सुरेश अवस्थी, देवराज 'दिनेश,' डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश', चन्द्रशेखर भट्ट, आदि-आदि हैं।

रेडियो-नाटक

एकांकी के समान ही रेडियो एकांकीकारों की सृष्टि भी बहुलता से हो रही है। इनके सृजेता प्रायः वे ही हैं जो एकांकीकारों के हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नाटक का विकास सम्पन्न और समृद्ध है। भविष्य भी समुज्ज्वल है।

—

श्री दिनकर : एक परिचय

श्री ओंकारनाथ दिनकर का जन्म संवत् १९६९ मार्गशीर्ष (२३ दिसम्बर १९१२) को मक्खनपुर (मैनपुरी-उ० प्र०) में श्री राधाकृष्णजी गुप्त के यहाँ हुआ। वे अपने प्रथम नाटक मुञ्जदेव (१९५४) के द्वारा ही हिन्दी के प्रथम कोटि के नाटककारों में अपना स्थान बना चुके हैं। श्री दिनकर राजस्थान के उन मूक साहित्य-सेवियों में से हैं जिन्होंने साहित्य-लेखन और पत्रकारिता के माध्यम से राजस्थान प्रदेश में जन-जागरण की धूमिल किरणों को सतत प्रकाशवान एवं पुष्ट बनाकर युग का मार्ग प्रशस्त किया है। सन् १९३४ से ही श्री दिनकर राजस्थान में साहित्य और पत्रकारिता के मंच पर अपनी विविध विधाओं के साथ साहित्य-सृजन में संलग्न रहे हैं।

सन् १९३८ से दिनकरजी माध्यमिक कक्षाओं के छात्रों के लिये राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत साहित्य देते रहे हैं। उन्होंने वर्षों तक, निरन्तर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं का संचालन-संपादन कर साहित्य की श्रीवृद्धि की है। उनकी प्रथम दो नाट्य कृतियों—मुञ्जदेव, भगवान् बुद्धदेव ने उन्हें नया मोड़ दिया है। इन कृतियों का सर्वरूपेण स्वागत हुआ, वे पुरस्कृत हुईं और पाठ्यक्रमों में निर्धारित रहीं है। अब तक श्री दिनकर के दस नाटक प्रकाश में आ चुके हैं। श्री दिनकर ने मुख्यत: उस नाट्य-परम्परा में जिसे स्वर्गीय जयशंकर प्रसाद छोड़ गये थे भारतीय संस्कृति और इतिहास के स्वर्ण पृष्ठ जोड़े हैं। राजस्थान साहित्य अकादमी ने उनकी एकांकी कृति 'मयूर फिर नाच उठे' पर एक सहस्र का पुरस्कार देकर उन्हें सम्मानित किया है। उनके रेडियो एकांकी भी पर्याप्त संख्या में प्रसारित हो चुके हैं।

अन्य नाटक तथा कथा-साहित्य—

मुञ्जदेव, विग्रहराज विशालदेव, धारेश्वर भोज, पवनंजय, अन्तिम सम्राट्, मृत्युञ्जय, ऋणशोध, गुर्ज्जरेश्वर नवविहान (सामाजिक) आदि हैं।

कहानी-संग्रह—समस्या और समाधान। रणबाँकुरे नौनिहाल।

उपन्यास—पतवार।

———

तथागत-नाटक

तथागत नाटक त्रिअंकी नाटक है। महात्मा बुद्ध के जीवन एवं उपदेशों का जन-जीवन, संस्कृति, विचारधारा तथा राजनीति पर गहरा और व्यापक प्रभाव पड़ा है। उनके जीवन से आज भी प्रकाश मिलता है। उनका जीवन प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। सिद्धार्थ का जन्म कपिलवस्तु नरेश शाक्येन्द्र शुद्धोदन के यहाँ लगभग ढाई सहस्र वर्ष पूर्व हुआ था। असितऋषि ने बालक के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की कि यदि बालक को जरा, रोग, मृत्यु और संन्यासी के दर्शन हो गये तो उसमें विरक्ति जागृत हो जायगी और वह विश्व का महान् धर्मोपदेशक होगा! सिद्धार्थ के मन में बाल्यावस्था से ही प्रकृति प्रेम, विरक्ति और जीवन-जिज्ञासा जागृत होती है। जरा, रोग, मृत्यु और संन्यासी के दर्शन से उनमें निर्वेद जागता है। वे राजसी वैभव-विलास का परित्याग कर सत्य की शोध के लिये गृहत्याग कर जाते हैं। अनेक तपस्याओं के पश्चात् सिद्धार्थ को ज्ञान की प्राप्ति होती है और वे जनजन को शाश्वत सत्य का उपदेश देते हैं। उनका धर्म 'बुद्धधर्म' कहलाता है, जनजन उसकी शरण आता है। यहाँ तक कि यशोधरा, शुद्धोदन, देवदत्त, सम्राट् बिम्बसार आदि भी बुद्धधर्म अपनाते हैं।

सिद्धार्थ को निमित-दर्शन देवदत्त और मगध के युवराज अजातशत्रु के षड्यंत्र से होता है, यह मेरी अपनी कल्पना-मान्यता है। सात-सात प्राचीरों की व्यवस्था करने वाले शाक्य सम्राट् की व्यवस्था भंग होजाना इतना सहज नहीं था, अवश्य कोई न कोई सिद्धार्थ का प्रतिद्वन्दी होना चाहिये। हंसिनी-काण्ड से लेकर मार-विजय के अवसर तक देवदत्त अपने प्रयोग कार्यान्वित करता रहता है ताकि वह सिद्धार्थ से प्रतिशोध ले सके। किन्तु अन्त में वह भी सिद्धार्थ की तपस्या के प्रति आकृष्ट होता है और उनका अनुयायी बन जाता है।

मेरी दृष्टि में यशोधरा भी सिद्धार्थ की सत्य की खोज में योग देती है, वह क्षत्राणी है, और क्षत्रिय-नारी पति के सुपथ को बल देती है। उसके मार्ग—प्रशस्त मार्ग में बाधक नहीं बनती।

नाटक तीन अंकों में विभाजित है, प्रत्येक अंक में सिद्धार्थ के जीवन की एक अलग स्थिति का दर्शन मिलता है। प्रथम अंक में सिद्धार्थ राजसी वैभव की ओट में अपनी विरक्ति पाते हैं। दूसरे अंक में निवृत्ति मार्ग पर बढ़ते हैं तथा तीसरे अंक में वे अपनी तपस्या-साधना के द्वारा ज्ञान की उपलब्धि-बुद्धत्व को प्राप्त होकर धर्म का उपदेश करते हैं। इस प्रकार सिद्धार्थ लोक-कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

इस नाटक में मैंने कुछ दृश्यों को प्रकाश-अन्धकार शैली का प्रयोग कर रंगमंच के लिये अधिक उपयोगी तथा प्रभावोत्पादक बनाने का प्रयास किया है। बुद्ध का आत्म-संघर्ष प्रकाश और अन्धकार का आश्रय लेने से अधिक आकर्षकण दे सकेगा, ऐसी मेरी मान्यता है।

नाटक में शास्त्रीय दृष्टि का पूर्ण रूप से निरूपण हुआ है।

राधाकृष्ण भवन,
हाथीभाटा, अजमेर।
नवम्बर, १९६६.

ओंकारनाथ दिनकर

पात्र परिचय

पुरुष-पात्र

सिद्धार्थ-तथागत : कपिलवस्तु नरेश शाक्येन्द्र शुद्धोदन के पुत्र ।
शुद्धोदन : सिद्धार्थ-तथागत के पिता ।
असित ऋषि : हिमालय के निकटवर्ती खण्ड के एक तपस्वी ।
नन्द : प्रजावती (शुद्धोदन की द्वितीय पत्नी) का पुत्र ।
देवदत्त : शाक्येन्द्र के अनुज, अमितोदन का पुत्र ।
आनन्द : देवदत्त का अनुज ।
छन्दक : सिद्धार्थ का बाल-सखा, धायपुत्र ।
अराड़कालम : सिद्धार्थ के प्रारम्भिक गुरु, एक तपस्वी ।
अजातशत्रु : मगध सम्राट् बिम्बसार का पुत्र, देवदत्त का मित्र ।
रुद्रक : सिद्धार्थ के ज्ञानगुरु, एक तपस्वी ।
कौण्डिन्य, वप्र, भद्रक, अश्वजित, महानाम } प्रारम्भ में अराड़कालम के शिष्य, बाद में तथागत के शिष्य ।
राहुल : सिद्धार्थ का पुत्र ।
सारिपुत्र : तथागत के पट्टशिष्य ।

इनके अतिरिक्त गृहामात्य, कृषि-अमात्य, कृषकवर्ग, राज-पुरोहित प्रजाजन, संथागार के प्रतिनिधि, मेषपाल आदि-आदि ।

स्त्री-पात्र

प्रजावती : शाक्येन्द्र शुद्धोदन की द्वितीय पत्नी, सिद्धार्थ की विमाता
अन्ना : सिद्धार्थ की धाय; छन्दक की माता ।
यशोधरा : सिद्धार्थ की पत्नी
प्रियम्वदा : यशोधरा की सखि
सुजाता : सेनानी ग्राम के एक धनिक की भार्या
राधा : सुजाता की सेविका
रम्भा : एक नर्तकी

इनके अतिरिक्त प्रतिहारिकाएं, सेविकाएं आदि-आदि !

अंक : एक—दृश्य : एक

मध्याह्न से पूर्व :

विक्रम से सातवीं शताब्दी पूर्व :

कपिलवस्तु : सम्राट् शुद्धोदन के राज-प्रासाद का एक कक्ष :

प्रासाद-कक्ष बौद्धकालीन शिल्प-कला का द्योतक है । कक्ष की भित्तियाँ एवं आधार-स्तम्भ कलात्मक हैं । शाक्येन्द्र शुद्धोदन तथा उनकी महिषियों के बैठने के लिये स्वर्ण की बनी पीठिकाएँ हैं । पीठिकाओं के सामने चन्द्राकार कुछ अन्य रजत-पीठिकाएँ हैं । सभी पीठिकाएँ रिक्त हैं । नेपथ्य में शंख-ध्वनि गूँजती है, उसके शान्त होते ही कुछ परिचारिकाएँ कक्ष में आती हैं और स्वर्ण-पीठिकाओं के दोनों ओर नत-मस्तक खड़ी हो जाती हैं, इसी बीच शाक्येन्द्र आते हैं, उनके पीछे प्रतिहारी तथा चार प्रहरी, दो आगे तथा दो पीछे स्वर्ण-दण्ड उठाये चलते हुए दृष्टिगोचर होते हैं । एक छत्रवाहिनी श्वेत छत्र लिये गजराज-गति से चल रही है । छत्र में मुक्ता-मालाएँ झूल रही हैं, जो परस्पर टकराकर मन्द-स्वर कर उठती हैं । शाक्येन्द्र शुद्धोदन की मुद्रा गम्भीर है । उनके दोनों स्कन्ध कुन्तल-केशों से ढके हुए हैं । शाक्येन्द्र गम्भीर मुद्रा में ही अपनी पीठिका पर विराजते हैं । चमर-वाहिनियाँ चमर डुलाने लगती हैं । सभी परिचारिकाएँ तथा अन्य उपस्थित यथास्थान पीछे होजाते हैं । शाक्येन्द्र की द्वितीय महिषी कुछ परिचारिकाओं के साथ प्रवेश करती है । महिषी प्रजावती की भी मुद्रा गम्भीर तथा चिन्ता-पूर्ण है । वह स्वर्ण-पीठिका के समीप आकर शाक्येन्द्र के प्रति सम्मान प्रदर्शन करती है तथा राजमहिषी के साथ आई हुई परिचारिकाएँ शाक्येन्द्र के सम्मुख आकर नतमस्तक विनय प्रदर्शन कर समीप वाले प्रमदा-

कक्ष में जाकर यथास्थान पर बैठती हैं। राजमहिषी प्रजावती शाक्येन्द्र के पास अपनी पीठिका पर बैठती है। वातावरण निस्तब्ध-सा बना हुआ है।

शुद्धोदन—(**चिन्तित मुद्रा में**) देवि, प्रसूता एवं शिशु का स्वास्थ्य अब कैसा है ?

प्रजावती—आर्य ! (**गम्भीरता धारण करती हुई**) बालक पूर्ण स्वस्थ है किन्तु परमभट्टारिका बालक को पाकर अपनी दशा में कुछ विशेष परिवर्तन पा रही हैं।

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) अपनी दशा में विशेष परिवर्तन ! देवि क्या कहना चाहती हैं ?

प्रजावती—आर्य, महादेवी का कथन सुनकर मन में व्यथा होती है।

शुद्धोदन—देवि स्पष्ट करें, हम उनकी व्यथा में भागीदार हैं।

प्रजावती—महादेवी कहती है……

रुक जाती है

शुद्धोदन—(**उत्सुकतापूर्वक**) शीघ्र कहो देवि !

प्रजावती—महादेवी कहती हैं, उनके चित्त में भय बढ़ता जा रहा है।

शुद्धोदन—(**आश्चर्य प्रदर्शन कर**) कैसा भय ?

प्रजावती—आर्य, क्षमा करें, महादेवी को संसार से विरक्ति हो रही है, वे जीवन को भार मानने लगी हैं।

शुद्धोदन—(**चिन्ता प्रदर्शन कर**) जीवन को भार समझने लगी हैं, महादेवी बालक को जन्म देकर ? देवि, उन्हें आश्वस्त कीजिये, धैर्य दीजिये।

प्रजावती—कर्त्तव्य का पालन कर रही हूँ आर्य ! महादेवी के जीवन में जैसे निराशा ने घर कर लिया है। मैंने उन्हें बताया है, हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई है।

शुद्धोदन—(**साधारण प्रसन्नता का भाव लाकर**) निःसन्देह हमारी

चिरपोषित अभिलाषा पूर्ण हुई है। कपिलवस्तु की मंगल कामनाएँ राज-परिवार को प्राप्त हुई हैं।

प्रजावती—सब भाँति समझ रही हूँ, आर्य !

शुद्धोदन—परमभट्टारिका का मातृत्व मुखरित हुआ है, देवि।

प्रजावती—हमें गौरव मिला है, आर्यश्रेष्ठ।

शुद्धोदन—हमें जीवन की सर्वोपरि साधना मिली है देवि। जिस फल की उपलब्धि के लिये हम इतने लालायित थे वह हमें मिल गया है। शाक्य-राज-प्रासाद ही नहीं, कपिलवस्तु का जन-जन हर्षोल्लास मनाने के लिये उत्साहित होरहा है।

प्रजावती—आर्य, महादेवी पितृगृह जाने के लिये उत्कण्ठित हैं।

शुद्धोदन—(**हर्ष की साधारण मुद्रा**) पितृगृह देवदह ! (**शिर हिलाते हुए**) ठीक ही तो है, क्या देवदह के कोलिय-नरेश अपने दौहित्र के जन्मोत्सव में सम्मलित नहीं होंगे ? अवश्य ! अवश्य ! देवि, राजमहिषी महा-माया को आश्वस्त करें, उनके पिता शीघ्र आ रहे हैं।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—(**नतमस्तक**) शाक्येन्द्र देवश्री की जय हो !

शुद्धोदन—प्रतिहारी कहो, क्या बात है ?

प्रतिहारी—प्रभो ! उत्तरापथ से तपोधन असित ऋषि पधारे हैं।

शुद्धोदन—(**हर्ष मुद्रा में**) सुना देवि ! तपोनिष्ठ कुमार को आशीर्वाद देने पधारे हैं। चलो प्रतिहारी, हम स्वयं उन्हें लाते हैं, हमारा सौभाग्य है।

उठकर प्रस्थान करते हैं, प्रजावती शाक्येन्द्र का अनुगमन करती है शाक्येन्द्र असित ऋषि को सम्बोधन करते हैं।

पधारिये ब्रह्मर्षि, पधारिये !

असित ऋषि आगे बढ़ते हैं, शुद्धोदन एवं प्रजावती उनके पीछे-पीछे चलते हैं। असित ऋषि की बगल में

मृग-चर्म और हाथ में कमण्डलु दिखाई देता है। मुद्रा गम्भीर है। सीधा हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए।

असित ऋषि—कल्याण हो राजन्! शाक्येन्द्र। समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हों।

शुद्धोदन—**(आसन की ओर संकेत)** पधारिये ऋषिवर! आसन ग्रहण कीजिये। कृपासिन्धु ने कपिलवस्तु को पावन किया है।

सभी आगे बढ़ते हैं। असित ऋषि एक आसन्दी पर मृगचर्म बिछाकर बैठते हैं, पास में कमण्डलु रखते हैं। उनके बैठने पर शुद्धोदन बैठते हैं, राजमहिषी प्रजावती प्रमदा-कक्ष में जाकर अपना आसन ग्रहण करती है।

असित ऋषि—राजन्! धर्म का रक्षण! नवीन-धर्म का संस्थापन! मनुष्यमात्र का कल्याण होगा! पाखण्ड का विनाश, और सत्य का अन्वेषण होगा!

शुद्धोदन—उपकृत हुआ देवर्षि!

शुद्धोद्धन कुछ उठकर विनय प्रदर्शन करते हैं और फिर यथा स्थिति बैठते हैं

असित ऋषि—धरती पर ब्राह्मणों का पाखण्ड और कर्म-काण्डियों का आडम्बर नष्ट होगा। आर्य सत्य के प्रसारहेतु बालक का जन्म हुआ है। करुणामूर्ति ने मानव-देह में प्रतिष्ठा की है।

शुद्धोदन—**(हर्ष मुद्रा में)** ब्रह्मर्षि की वाणी··· **(भावावेशपूर्वक)** सत्य हो।

असित ऋषि—परमभट्टारिका महामाया पितृकुल जाना चाहती थीं किन्तु विधि का विधान, महर्षि कपिल की पुण्य भूमि सलिला—शस्य श्यामला कपिलवस्तु को गौरव मिलना था। आत्मा को एक प्राचीर से दूसरे

प्राचीर का बन्धन स्वीकार नहीं था। प्रासाद-प्रांगण से निकल, स्वच्छ समीर में, शालतरु के नीचे, बालक ने जन्म लिया। बालक जन्म से ही स्वातंत्र्य का स्वाभिमान लेकर अवतरित हुआ है।

शुद्धोदन—(सविनय हर्ष-मुद्रा में) देवर्षि !

असित ऋषि—राजन् ! दयामूर्ति सत्य के आदि प्रवक्ता बालक, बुद्ध से जन-अधिनायक का कल्याण होगा। शाक्येन्द्र, मेदिनी पर मनुष्य-समाज में बन्धुत्व भावना का ह्रास हो उठा है। देश-प्रेम को समुदाय और व्यक्ति-प्रेम की सीमा में बाँधा जाने लगा है। मानव-समाज में एक दूसरे के अधिकार का अपहरण होने लगा है। रक्तपात और लूटमार से विश्व की आत्माएँ कराह उठी हैं, यह बालक विश्व-बन्धुत्व की भावना को जाग्रत करेगा। धरती के लालों को एक-सूत्र में पिरोयेगा। बालक विश्व-प्रेम का पाठ पढ़ाकर जगत् को उन्नायक रूप देगा राजेन्द्र।

शुद्धोदन—(हर्ष-मुद्रा में) भगवन्...आशीर्वाद।

असित ऋषि—शाक्यराज, सत्य और अहिंसा से हिंसकवृत्ति और आस्तेय धारणा को विगलित करेगा बालक। धरती पर छाये हुए हाहाकार को सुनकर बालक की निरीह आत्मा विकलित होगी। वही विकलता जगत् का उद्धार करेगी। बालक की आत्मा मानव-पीड़ा को अनुभव करेगी और वही अनुभूति बालक को राज-प्रासाद में बन्धक न रहने देगी। विश्व-धर्मोपदेशक का मार्ग प्रशस्त होगा।

शुद्धोदन—(सचिन्ता) मुनिश्रेष्ठ का कथन...................

रुक जाते हैं

असित ऋषि—नृपति ! बालक का नक्षत्र-ज्ञान तो हमें समाधि-अवस्था

में ही मिल चुका था । दर्शन-लाभ का मोह ही हमें यहाँ खीच लाया है ।

शुद्धोदन—आज्ञा शिरोधार्य है करुणा-निधान ! **(प्रजावती को संकेत करके)** देवि ! तपोबल बालक को उपकृत करना चाहता है ।

प्रजावती एक प्रतिहारी के साथ जाती है ।

असित ऋषि—राज-प्रासाद हर्ष से पूर्ण होगया है !

ऋषि अपने केशों पर बारबार हाथ फेरते हैं ।

शुद्धोदन—तपोधन की कृपा का प्रसाद पाकर कौन अभागा रहेगा !

प्रजावती परिचारिका के अंक में बालक को लिये आती है और उससे बालक को लेकर ऋषि के सम्मुख प्रस्तुत करती है ।

प्रजावती—ऋषिराज, लीजिये, हमारी सर्वार्थसिद्धि । सचमुच उपकृत हुए हैं, तपोधन !

ऋषि बालक को अपनी अंजलि में ले लेते हैं । परिचारिका-प्रजावती प्रमदा-कक्ष में चली जाती हैं ।

असित ऋषि—**(बालक के शरीर पर गहरी दृष्टि डालते हुए)** राजन्! कपिलवस्तु के भाग्य उदय हुए हैं । शाक्य-कुल-शिरोमणि का आविर्भाव हुआ है ।

शुद्धोदन—**(आधार प्रदर्शन करते हुए)** देववाणी कपिलवस्तु को अलंकृत कर रही है । अहोभाग्य !

असित ऋषि—**(बालक को पुनः गम्भीरतापूर्वक देखते हैं : क्षणिक चिन्तन के पश्चात्)** राजन् ! बालक में बत्तीस लक्षण प्रस्तुत हैं । बालक को मानसों में कमनीय कमल के समान रूप तथा गुण मिले हैं । प्रजापति का आशीर्वाद सफल होगा । वैशाखी के पूर्णेन्दु ने अपनी सोलहवीं कला प्रतिष्ठित की है ।

शुद्धोदन—भगवन् ! बालक निरन्तर फले-फूले । सुख-समृद्धि एवं आनन्द का उपभोग करे ।

असित ऋषि—(**बालक पर गहरी दृष्टि डालते हुए**) राजन् ! (**विचारकर, सचिन्ता**) राजन् !

शुद्धोदन—(**चिन्ता ग्रस्त होते हुए**) तपोधन !

असित ऋषि—राजन् ! कुमार सर्वपूज्य है किन्तु···किन्तु एक अनर्थ दिखाई दे रहा है ।

शुद्धोदन तथा उपस्थित जन चिन्ताग्रस्त हो उठते हैं ।

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) ब्रह्मर्षि का आशीर्वाद !

असित ऋषि—शाक्येन्द्र ! बालक महान् प्रतापी होगा—सम्भवत: चक्रवर्ती सम्राट्······

सभी उपस्थित प्रसन्नता का अनुभव करते दीखते हैं ?

किन्तु यदि······

शुद्धोदन—(**उत्कण्ठापूर्वक**) किन्तु, यदि ? तपोनिष्ठ ! भवदीय कृपा के अभिलाषी हैं, हम सब !

असित ऋषि—(**चिंतित स्वर**) शाक्यराज ! दैववशात् यदि बालक को युवावस्था में विमोह जागृत होगया तो······

शुद्धोदन—(**चिन्ता एवं उत्कण्ठापूर्वक**) बालक को विमोह ?

असित ऋषि—हाँ, राजन् !···तब बालक एक महान् धर्मगुरु होगा। धर्मयुग का सृष्टा—धर्मोपदेशक !

शुद्धोदन— **सचिन्ता**) ऋषिवर्य की वाणी संशय प्रकट कर रही है ! बालक चक्रवर्ती और धर्मोपदेष्टा ! भगवन् ! (**आतुरतापूर्वक**) रहस्य स्पष्ट करें !

असित ऋषि—(**गम्भीरतापूर्वक**) राजन्, ऐसा ही विधान है । सम्भवत: यही होगा, ऐसा ही । यदि बालक की गृहस्थ-धर्म में रुचि शिथिल हो गई तो बालक युवावस्था में भी राजकाज में मन नहीं लगा सकेगा ।

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) ऋषिवर्य !

असित ऋषि—राज-पाट, माता-पिता, स्त्री-पुत्र का बन्धन इसे बाँधकर

नहीं रख पायेगा (**अति गम्भीर मुद्रा में**) इसकी करुणा इसकी दया-आर्द्रता, इसकी पीड़ा पाप-ताप से संतप्त प्राणिवर्ग को मोह-अन्धकार से दूर कर उसे सत्य, शिव की ओर ले जायेगी। बालक निर्माण-मार्ग का पथ-प्रवर्त्तक होगा।

शुद्धोदन—ऋषिश्रेष्ठ ! ऋषिश्रेष्ठ ! हम यह क्या सुन रहे हैं ?

असित ऋषि—विधि के अंक प्रबल हैं राजन् ! बालक के मानस में विराग······

बालक को देखते हुए गहरी श्वास छोड़ते हैं।

शुद्धोदन—(**चिन्तित होकर**) तब तपोधन ही कोई मार्ग बतायें ! ऋषिवर ! हम उपाय करेंगे !

असित ऋषि—(**गम्भीरतापूर्वक**) उपाय ! उपाय है तो राजन् !

शुद्धोदन—तब शीघ्र प्रकट करें देवर्षि, हम सब कुछ करने को तैयार हैं।

असित ऋषि—यदि शाक्येन्द्र बालक को वैराग्य-भावना से दूर रख सके तो······

शुद्धोदन—(**उत्कण्ठापूर्वक**) तपोनिष्ठ, आदेश का पालन होगा। बालक विराग से दूर·····बहुत दूर रहे······इस का प्रयास करेंगे।

असित ऋषि—(**गम्भीरतापूर्वक**) तो सुनें राजन् ! वृद्ध, रोगी, मृतक और संन्यासी······

शुद्धोदन—वृद्ध, रोगी, मृतक और संन्यासी !

असित ऋषि—धैर्यपूर्वक सुनें शाक्येन्द्र ! ये ही चार निमित्त हैं जो कुमार को वैराग्य-पथ की ओर ले जा सकते हैं। राजन् ! बालक का भविष्य इन चारों की प्रतिच्छाया से बचा रह सका तो, सम्भव है, कुमार में वैराग्य-भावना उदय न हो। यदि भूल से भी बालक ने इन्हें देख लिया तो···तो फिर कोई उपादान समर्थ न रह पायेगा।

शुद्धोदन—(**कर्तव्य-विमूढ़-सा**) राजर्षि ! यह बालक महान् सिद्धियों के पश्चात् पाया है । तपोधन के आदेश का पालन करेंगे ।

असित ऋषि—ऐसी ही है अनन्त की छाया ! ऐसा ही है विधि का विधान ! राजन्, हम तो महाप्रयाण कर जायँगे । (**अश्रुपूरित नेत्रों से**) हम न सुन सकेंगे जगद्गुरु का सत्योपदेश ! राजन्, यदि राज-प्रासाद की प्राचीरें बालक को न रोक सकीं तो कोटि-कोटि मानव इसकी शरण में आकर शान्ति-लाभ लेगा । राज-प्रासादों का वियोग असंख्य मनुष्यों को संयोग-लाभ देगा । शाक्येन्द्र धरती का भार हल्का होगा । राजन्, आपने इस बालक को पाकर सर्वार्थसिद्धि उपलब्ध की है, अत: मैं इसका नाम सिद्धार्थ रखता हूँ ।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ ! (**चिन्तनपूर्वक**) सिद्धार्थ···नि:सन्देह, ऋषिवर्य जैसे हमें सभी सिद्धियाँ मिल गई हैं । बालक का नाम सुन्दर है । तपोनिष्ठ, हमें आशीर्वाद दें बालक को पाकर हमारी आत्मा सन्तोष पाती रहे ।

असित ऋषि—शाक्यराज ! बालक में बुद्ध का प्रादुर्भाव हुआ है, इसे महान् सत्य की उपलब्धि के हेतु गृह-त्याग करना होगा···किन्तु एक त्याग निकट ही दिखाई दे रहा है ।

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) त्याग ! निकट भविष्य में ही त्याग······ ऋषिवर हम आदेश का अक्षरश: पालन करेंगे !

असित ऋषि—राजन् (**चिन्ताग्रस्त होकर**) शाक्येन्द्र !

शुद्धोदन—तपोधन, अभिप्राय प्रकट करें ।

असित ऋषि—राजन् ! बुद्ध-जननी, महामाया, इस संसार को छोड़ना चाहती हैं, महामाया रोग से घिर चुकी हैं ।

सभी शोकातुर हो उठते हैं । प्रतिहारी का प्रवेश ।

प्रतिहारी—(**नत मस्तक**) प्रभो ! महादेवी में व्याकुलता बढ़ रही है ।

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) यह क्या हो रहा है ? महर्षि ! महर्षि !

असित ऋषि—राजन् विधि के आलेख को कौन मिटा सका है ! (**प्रजावती के प्रति**) राजमहिषी प्रजावती ! बालक पर रोगी और मृतक की छाया न पड़े । लो, संभालो

शीघ्रतापूर्वक प्रजावती आकर बालक को लेकर अपने अंक में छिपा लेती है ।

शुद्धोदन—विधि का लेख ! बुद्ध जननी—महादेवी······

असित ऋषि—राजन्, ऐसे प्रबुद्ध बालक मातृ-सुख से वंचित रह जाते हैं······और यही विधान है ।

शुद्धोदन—तपोनिष्ठ इतना कटु सत्य !

असित ऋषि—शाक्येन्द्र ! कटु सत्य कहना होगा, समय दूर नहीं है । महादेवी महामाया अब केवल चार रात्रि और चार दिवस पीड़ा भोगकर, इस लोक से प्रयाण कर जायँगी । रोगी और मृतक, चार निमित्तों में से दो निमित्त राज-प्रासाद में ही आ उपस्थित हुए हैं ।

शुद्धोदन—(**सकरुणा**) ब्रह्मर्षि ! विधि की विडम्बना । रोगी ! और मृतक···कुछ काल के पश्चात् ही······

असित ऋषि—(**गम्भीतापूर्वक**) राजकुमार पर इनकी प्रति छाया भी न पड़े ।

असित ऋषि के उठने पर शुद्धोदन आदि उठते हैं ।

शुद्धोदन—(**कातरतापूर्वक**) तपस्विन् ! रक्षा ! ब्रह्मनिष्ठ रक्षा !

असित ऋषि—(**गम्भीरतापूर्वक**) सन्तोष और धैर्य, त्याग और संयम, जीवन में निरन्तर उठते हैं, शमन होते हैं, पुनः उठते और शमन होते हैं, यही चक्र है । जो कल था उसे भूलना है, जो आज है उसे भावी कल की प्रतीक्षा में लेकर चलना होता है । राजन्, अब हम जायँगे । आपके कर्त्तव्य में हम बाधक नहीं रहेंगे । जाओ, महादेवी को शान्त्वना दो । उनका अभिजात कुमार विश्व में उन्हें अमर-पद दिलाने आया है ।

शुद्धोदन—ब्रह्मर्षि ! आतिथ्य ग्रहण करके पधारें। अतिथि का सत्कार न करना, अकृतघ्नता होगी। कपिलवस्तु की संस्कृति की परम्परा·········

असित ऋषि—शाक्येन्द्र ! आपत्तिकाल में मर्यादा भंग का दोष नहीं होता। रोगीचर्या प्रथम कर्त्तव्य है। राजन् उपाय करो, रोगी की पीड़ा शान्त हो ! जाओ राजन् ! अब हम प्रस्थान करते हैं।

कमण्डलु तथा मृग-चर्म उठाकर गम्भीर मुद्रा में प्रस्थान करते हैं शाक्येन्द्र तथा प्रजावती उनका अनुगमन करते हैं। द्वार पर पहुँच कर ऋषि बालक पर आशीर्वादसूचक हाथ फेरते हैं और थोड़ी ही देर में प्रस्थान कर जाते हैं। शुद्धोदन तथा प्रजावती अपने-अपने आसनों पर आकर बैठते हैं।

शुद्धोदन—देवि प्रजावती, हमारी सुख-शान्ति विक्षुब्ध हो रही है। बालक को रोगी का दर्शन न हो। शिशु माता के दर्शन से वंचित और माता शिशु को न देखे, कैसा करुण योग बना है। एक ओर मातृत्व दूसरी ओर निमित्त। माता जब सुनेगी उसका अंश उससे दूर रखा जा रहा है तब क्या उसकी ममता कराह नहीं उठेगी ! माता का हृदय कैसे धीरज रख सकेगा !

प्रजावती—(**सकरुणा अश्रुपूरित नेत्रों से**) आर्य ! महादेवी······

शुद्धोदन—(**सव्यथा** महादेवी का जीवन-दीप बुझना चाहता है !

प्रजावती—(**सव्यथा**) देव, सुदिन के साथ ही दुर्दिन भी देखना पड़ रहा है। (**कातरतापूर्वक**) बहिन महामाया की जीवन-ज्योति ! ······यह कैसा विधान बना ?

शुद्धोदन—धैर्य और सन्तोष !ऋषि की वाणी···(**रुकजाते हैं**)

प्रजावती—आर्य ! (**कातरतापूर्वक**) सुख का प्रभात दुःख की सन्ध्या लेकर आया है। कटु सत्य कहीं देखना न

पड़े, यही कामना कर रही हूँ। मैं तो महादेवी के कथन से ही सिहर उठी थी। आर्य को पीड़ा न पहुँचे इसी हेतु उस कटु मर्म को छिपाए हुए थी। (**गम्भीरतापूर्वक**) महादेवी का वह भयावह कथन·········

शुद्धोदन—(**आतुरतापूर्वक**) क्या कहा था, महादेवी ने ?

प्रजावती—(**करुणापूर्वक**) देव ! बहिन महामाया ने कहा था—'प्रजावती, बालक को मैं तुम्हारे संरक्षण में देती हूँ, तुम्हीं इसके मातृत्व-पद को सुशोभित करोगी। मैं तो इस संसार से चली जाऊँगी।'

शुद्धोदन—(**व्यथापूर्वक**) महादेवी क्या इतना ही संयोग लेकर आई थीं ? जीवन की साध पूरी तो हो जाने देतीं। प्रभु ! यह कल्पना -असत्य होकर रहे। (**खिन्नतापूर्वक**) वैशाखी का पूर्णेन्दु !···वैशाखी का पूर्णेन्दु ? बालक ! (**व्यथापूर्वक**) चार दिवस और चार रात्रि !···ऋषि की वाणी !···ओह महादेवी !

प्रजावती—चलिये आर्य, महादेवी को दर्शन दें, उन्हें धीरज देना है।

शुद्धोदन—हाँ, हाँ, चलिये, किन्तु यह बालक ?

प्रजावती—मैं व्यवस्था कर लूँगी, आर्य।

प्रतिहारी का प्रवेश

प्रतिहारी—(**नतमस्तक**) देव, महादेवी चेतना-शून्य हो गई हैं।

शुद्धोदन—हा दैव !

शीघ्रतापूर्वक सब का प्रस्थान

•

यवनिका

अंक : एक—दृश्य : दो :

सूर्योदय के पश्चात् :

कपिलवस्तु के राज-प्रसाद का समीपवर्ती उद्यान :

विस्तृत उद्यान में नानाभाँति की लताएँ, पुष्प-पादप, झुरमुट आदि दिखाई देते हैं। अनेक मण्डपों पर छाई हुई माधवी लताओं पर सुवासित पुष्प खिल रहे हैं! श्वेत पाषाण के बने जल-स्रोतों से समीर नन्हीं-नन्हीं फुहारें छोड़ रहा है। बालरवि की सुन्दर, सुहावनी किरणें सर्वत्र बिखर रही हैं। एक प्रौढ़ा अपने साथ कुछ किशोर बालकों के साथ भ्रमण करती दिखाई देती है। राजकुमार सिद्धार्थ तथा नन्द भी उनमें हैं।

सिद्धार्थ—राजकुमार नन्द ! मैं नही खेलूँगा ! तुम खेलो, जाओ !

नन्द—युवराज, ऐसा क्यों ? आओ हम सब मिलकर खेलें। बड़ा आनन्द रहेगा। युवराज आओ, (**सिद्धार्थ का हाथ पकड़ कर**) आओ युवराज, आओ !

सिद्धार्थ हाथ छुड़ाने की चेष्टा करते हैं किन्तु नन्द छोड़ना नहीं चाहते।

सिद्धार्थ—नहीं नन्द, आज मेरा जी नहीं करता। जाओ तुम खेल का आनन्द लो ! मैं वहाँ बैठता हूँ (**हाथ छुड़ा कर एक लता-मण्डप की ओर संकेत करते हुए**) मैं एकान्त चाहता हूँ राजकुमार।

आनन्द तथा देवदत्त का प्रवेश

आनन्द—आओ युवराज, हमारे साथ आओ।

सिद्धार्थ—नहीं आनन्द, खेल में मेरी रुचि नहीं है।

देवदत्त—रहने दो आनन्द, आओ, नन्द हम सब दौड़ें—उद्यान के एक छोर से दूसरे छोर तक।

आनन्द तथा देवदत्त का शीघ्रतापूर्वक प्रस्थान ।
नन्द रुक जाता है ।

नन्द—जाओ तुम सब ! मैं तो युवराज के साथ रहूँगा ।

देवदत्त—(**दूर से**) तब रहो…वहीं ।

नन्द—चलो युवराज मैं भी वहीं बैठूँगा, जहाँ तुम्हारी रुचि है ।

सिद्धार्थ—(**महिला के प्रति**) अन्ना ! छन्दक नहीं आया ?

नन्द—हाँ, अन्ना छन्दक कहाँ रह गया ?

अन्ना—आता ही होगा, राजकुमारो । (**इधर उधर देखती है**) लो, युवराज छन्दक वह आ रहा है। (**मुस्कराते हुए**) छन्दक को चैन कहाँ ! बिना युवराज के उसका मन कहीं नहीं लगेगा ।

दौड़ते हुए छन्दक का प्रवेश

छन्दक—आओ, युवराज घूमें ! इस लता-मण्डप से उस लता-मण्डप को देखें ।

नन्द—युवराज, देख रहे हो रंगविरंगी तितिलियाँ, एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर थिरकती हुई !

सिद्धार्थ—नन्द, तुम छन्दक को साथ लेलो । आज भ्रमण करने को जी नहीं करता । मैं तो उस (**संकेत करके**) माधवी-लता के पास बैठता हूँ ।

छन्दक—राजकुमार, देवदत्त और आनन्द कहाँ गये ?

सिद्धार्थ—राजकुमार नन्द को छोड़ गये हैं। वे उस ओर… (**संकेत करके**) गये हैं, तुम नन्द को लेलो, छन्दक ?

छन्दक—जब युवराज नहीं खेलते तो मैं भी नहीं जाता । मैं भी माधवी-लता के नीचे बैठूँगा । जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ वहाँ छन्दक, क्यों राजकुमार नन्द ?

नन्द—(**हर्षपूर्वक**) हाँ, हाँ छन्दक ठीक ऐसा ही ।

अन्ना—(**समीप आकर**) छन्दक, ध्यान रहे युवराज को किसी प्रकार पीड़ा न पहुँचे । इन सब में तुम बड़े हो ।

छन्दक—माँ मुझे स्मरण है। (**युवराज तथा नन्द से**) आओ युवराज चलें।

तीनों लता-मण्डप की ओर बढ़ते है। अन्ना उनके पीछे पीछे मन्द-मन्द मुस्कराती हुई दूसरी ओर चली जाती है।

सिद्धार्थ—(**एक लता-मण्डप के समीप पहुँच कर**) यहाँ बैठेंगे। (**माधवी लता की खिली हुई कलियाँ देखकर, साश्चर्य**) छन्दक ! देख रहे हो, कल ये छोटी-छोटी कलियाँ थीं, आज खिल गई हैं !

छन्दक—कली पुष्प बनती है, युवराज।

सिद्धार्थ—कलियाँ पुष्प क्यों बनती हैं छन्दक ?

छन्दक—मनुष्य के समान उनमें भी जीवन होता है युवराज !

सिद्धार्थ—बड़ी सुहावनी सुगन्ध है इनमें छन्दक !

छन्दक—युवराज प्रत्येक विकास आनन्ददायक होता है। किसी में आकर्षण होता है तो किसी में गन्ध बढ़ती है।

सिद्धार्थ—परन्तु ऐसा होता क्यों है छन्दक ?

छन्दक—प्रकृति का नियम है, युवराज।

सिद्धार्थ—प्रकृति का नियम !

छन्दक—यह नित्य है युवराज।

सिद्धार्थ—प्रकृति नित्य है तो.........

छन्दक—...तो वह सत्य है।

सिद्धार्थ—किन्तु यह सब हुआ कैसे ?

छन्दक—जीव और जगत् का निर्माता परमेश्वर है। सब का रचयिता परमेश्वर, ईश्वर है।

सिद्धार्थ—(**गम्भीर चिन्तन-मुद्रा**) पुष्प और कलियाँ, लता-पादप सब ईश्वर ने बनाये हैं। सबको ईश्वर बनाता है।

नन्द—हाँ, हाँ, युवराज सबको ईश्वर बनाता है। हमें भी उसी ने बनाया है।

सिद्धार्थ—ठीक है, ईश्वर ने हमें बनाया है।

छन्दक—युवराज ये पुष्प (**संकेत कर एक पुष्प तोड़ता है**) प्रिय हैं तुम्हें !

सिद्धार्थ—(**चौंककर**) अरे! क्यों तोड़ लिया इसे ?

छन्दक—इसमें सुरभि है, प्रिय सुगन्ध, सूँघो युवराज।

• **सिद्धार्थ**—इसे सूँघूँ !

छन्दक—हाँ, (**सूँघने का उपक्रम करके**) इस प्रकार !

नन्द—(**एक अन्य पुष्प को तोड़कर सूँघता है**) बड़ी प्रिय है गन्ध !

सिद्धार्थ—तुमने भी तोड़ लिया नन्द, मत तोड़ो। इन्हें कष्ट होता होगा !

छन्दक—कष्ट! (**हँसते हुए**) कष्ट ! युवराज प्रकुति ने मनुष्य के लिये न जाने कितने पुष्प विकसित किये हैं। इनकी सुगन्ध का आनन्द लो युवराज और जब यह कुम्हला जायँ तो फैंक दो।

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) जब कुम्हला जायँ तो फैंक दो ! छन्दक, पुष्प कुम्हला क्यों जायँगे ? क्या इनकी सुन्दरता ऐसी ही नहीं रहेगी ?

छन्दक—युवराज कितने सरल हो, इतना भी नहीं जानते ? पुष्प विकसित होते हैं, फिर कुम्हला जाते हैं ? कुम्हला कर धूल में मिल जाते हैं ?

नन्द—हमें जानकर क्या करना है ! आओ युवराज हम खेलें।

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) नहीं, हमें जानना चाहिये, पुष्पों को तोड़ना नहीं चाहिये। हम खोज करेंगे, फूल कैसे बना ? क्यों विकसित हुआ? और···और विकसित होकर मुरझा क्यों गया ? ऐसा नित्य होता है, पर क्यों ? कहाँ नहीं होता ऐसा ? कब नहीं होता ऐसा ?

नन्द—किन्तु बतलायेगा कौन ? मैं नहीं जानता, बन्धु छन्दक भी नहीं जानता ।

सिद्धार्थ—माताजी से पूछूँगा । पिताजी तो जानते होंगे ? कोई तो अवश्य जानता होगा···कोई न कोई अवश्य जानता होगा !

राजमहिषी प्रजावती का प्रवेश

प्रजावती—सिद्धार्थ ! क्या सोच रहे हो ? मुद्रा गम्भीर क्यों है ?

सिद्धार्थ—माताजी तुम जानती हो ?

प्रजावती—**(चिन्तित किन्तु मुस्कराने की चेष्टा करती हुई)** हाँ, हम सब जानती है । क्या पूछ रहे थे युवराज ?

छन्दक—माताजी युवराज पूछते हैं, कलियाँ कैसे आईं, फूल कैसे बना ?

नन्द और छन्दक हँसने लगते हैं, सिद्धार्थ एकटक उनकी ओर देखते हैं ।

प्रजावती—(**हँसती हुई**) युवराज तुम बड़े चतुर हो ! चलो, घर चलें ।

सिद्धार्थ—(**गम्भीर मुद्रा में**) तब बताओ माँ, यह आम का वृक्ष इतना बड़ा कैसे हुआ ? इसमें मंजरी कहाँ से आई ?···और (**संकेत करके**) ये फल कहाँ से आये ?

प्रजावती—यह सब होता है, सदासदा से होता आया है । यह प्रकृति का नियम है । चलो यहाँ से !

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) मैं जानूँगा यह सब ।

प्रजावती—अभी तुम बालक हो, बड़े होने पर स्वयं जान जाओगे । युवराज !

सिद्धार्थ—माँ, (**एक पक्षी की ओर संकेत कर**) वह देखो उस वृक्ष पर श्यामा बैठी है वह नित्य यहाँ आकर क्रीड़ा करती है, मीठे स्वर बोलती है तो मुझे प्रिय लगते हैं, और ··· ··· और कभीकभी क्रन्दन भी करती

है। माँ ! श्यामा जब क्रन्दन करती है तो मेरा हृदय पीड़ित क्यों होने लगता है ?

सहसा अन्ना के साथ शाक्येन्द्र शुद्धोदन का प्रवेश

प्रजावती—पधारिये आर्यपुत्र ! आज सिद्धार्थ विचित्र प्रश्न पूछ रहे हैं !

शुद्धोदन—(**विस्मय और साधारण प्रसन्न मुद्रा में**) सिद्धार्थ विचित्र प्रश्न पूछ रहे हैं ! (**सिद्धार्थ के प्रति**) क्यों सिद्धार्थ ?

सिद्धार्थ—पितृश्री, माता अपने बालक की जिज्ञासा का समाधान नहीं कर सकीं।

शुद्धोदन—(**हंसते हुए**) सच ?

सिद्धार्थ—हाँ पितृश्री, माताजी स्वयं नहीं जानतीं। छन्दक और राजकुमार नन्द भी नहीं जानते।

शुद्धोदन—(**हंसते हुए**) हाँ ! ऐसा है ? क्यों नन्द, क्यों छन्दक ?

हँसने का उपक्रम करते हैं तो तभी हँस पड़ते हैं

सिद्धार्थ—(**गम्भीर मुद्रा में**) पिताजी इनमें कोई कुछ नहीं जानता।

शुद्धोदन—तो हम बतायेंगे अपने पुत्र को (**दुलार से सिद्धार्थ के शिर पर हाथ फेरते हुए**) सिद्धार्थ क्या हैं तुम्हारे प्रश्न ?

सिद्धार्थ—बताइये पिताजी, लता पर कलियाँ कहाँ से आईं ? फूल कैसे बन गईं ?

छन्दक—और······और महाराज पुष्प मुरझाते क्यों हैं ?

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) पितृश्री यह सब क्यों होता है ?

शुद्धोदन—(**हँसते हुए**) सिद्धार्थ चलो, अब चलें !

सिद्धार्थ—(**गंभीर मुद्रा में**) तब पिताजी भी नहीं जानते ! हाथों की (**अञ्जलि बनाकर, ठोड़ी पर रखकर**

खिन्नता धारण कर बैठ जाते हैं) मैं स्वयं सोचूँगा, यह सब क्यों होता है ?

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) खिन्न मत हो सिद्धार्थ हम बतलायेंगे तुम्हें ?

सिद्धार्थ—(**खड़े होकर**) तब बताइये पिताजी। कुछ दिन पूर्व ये झुरमुट छोटे-छोटे थे, अब फैल गये हैं। (**संकेत करके**) ये लताएँ बढ़ कर फैल गई हैं। कलियों का स्थान पुष्पों ने ले लिया है। अब इन पुष्पों का क्या होगा ? ये धूल में क्यों मिल जायँगे ? मेरे नित्य के साथी—वे हिरण, वे शशक, वे हंस इतने बड़े क्यों होगये हैं ? हंसों के बच्चे बढ़ गये हैं, यह सब क्यों ? कैसे पिताजी ?

छन्दक—···और तुम भी तो बड़े होगये हो।

सब हँस पड़ते हैं।

शुद्धोदन—···छोटे बालक ऐसी बातें नहीं सोचते सिद्धार्थ।

सिद्धार्थ—(**व्यग्रतापूर्वक**) बताइये पिताजी, बताइये।

शुद्धोदन—यह सब प्रकृति की देन है सिद्धार्थ, प्रकृति और जीव नित्य नवीन रूप धारण करते हैं।

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) प्रकृति नित्य नवीन रूप धारण करती है !

शुद्धोदन—हाँ सिद्धार्थ, प्राणिमात्र में नित्य नवीनता आती है उसमें नित्य परिवर्तन होते रहते हैं

सिद्धार्थ—तब प्रकृति ही सब कुछ हुई ?

शुद्धोदन—नहीं, इसका बनाने वाला भी है।

सिद्धार्थ—कौन···? क्या आप ?

शुद्धोदन—(**हँसते हुए**) नहीं पुत्र, हम नहीं। प्रकृति का बनाने वाला, जीव-जगत् का सृजन करने वाला ईश्वर है।

सिद्धार्थ—ईश्वर कहाँ है पिताजी ? हम उससे पूछेंगे, ऐसा क्यों करता है वह ?

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) सिद्धार्थ ! वत्स !

सिद्धार्थ—कहाँ रहता है ईश्वर ? बताइये पिताजी !

शुद्धोदन—वह सब जगह है। सृष्टि की शृंखला उसी ने बनाई है। ईश्वर सर्वव्यापक है।

सिद्धार्थ (**संकेत करते हुए : गम्भीर मुद्रा में**) इन पुष्पों में भी ?

शुद्धोदन— (**गम्भीरतापूर्वक**) हाँ, इन पुष्पों में भी है।

सिद्धार्थ—इन लताओं में भी ?

शुद्धोदन—ये लताएँ पुष्पों की जनक हैं, वत्स !

सिद्धार्थ—ईश्वर पशु-पक्षियों में भी है।

शुद्धोदन—(**चिन्ताग्रस्त होकर**) हाँ, सिद्धार्थ वह सब में है !

सिद्धार्थ—·······हममें भी ?

शुद्धोदन—(**मुस्कराने की चेष्टा करते हुए**) हाँ, हम में, तुममें, (**छन्दक तथा नन्द की ओर संकेत करके**) इनमें भी ?

सिद्धार्थ—(**गम्भीर चिन्तनपूर्वक**) ईश्वर से आगे क्या हुआ ?

शुद्धोदन—(**गम्भीर चिन्तन मुद्रा प्रदर्शन कर**) यहीं अन्त है इस शृङ्खला का।

सिद्धार्थ—तब ईश्वर सबसे ऊपर रहा ? उससे बढ़कर कोई नहीं। तब वह हमें दिखाई क्यों नहीं देता ?

शुद्धोदन—वत्स, ईश्वर निराकार है।

सिद्धार्थ—ईश्वर का आकार नहीं··· (**गम्भीरतापूर्वक**) ···ईश्वर का आकार नहीं, प्रकृति साकार है।

शुद्धोदन—(**सजल नेत्रों में**) चलो वत्स, अब चलो !

सिद्धार्थ—पिताजी, (**शुद्धोदन की ग्रीवा में बाँहें डालकर**) आपके नेत्रों में आँसू ! इन आँसुओं को देखकर मुझे पीड़ा होती है पिताजी।

शुद्धोदन—(**आँसू पोंछते हुए**) लो, अब कहाँ हैं आँसू ? (**हँसने का उपक्रम करते हुए**) पुत्र, तुम भी हँसो ! हँसो !

सिद्धार्थ—(**हँसने का उपक्रम करते हुए**) पिताजी !

●

यवनिका

अंक : एक—दृश्य : तीन

अरुणोदय :

कपिलवस्तु : राज-प्रासाद के पास कृषि-भूमि :

कृषि-भूमि का विस्तृत क्षेत्र वर्षा से भीगा हुआ दिखाई देता है। इस भूमि का एक भाग राजवंश के लिये सुरक्षित है। अनेक राजकर्मचारीगण, महामात्य, कृषि-अमात्य, राज-पुरोहित तथा अन्य उच्चाधिकारी उपस्थित हैं। इनके समीप किशोरियाँ रजतथालों में अक्षत, कुंकुम, पुष्प, कपूर आदि मांगलिक पदार्थ लिए हैं। एक किशोरी दोनों हाथों में मंगल-कलश उठाये हुए है। नेपथ्य में रथ के आने का स्वर गूँजता है। स्वर शान्त होते ही उपस्थितजनों में शाक्येन्द्र शुद्धोदन युवराज, सिद्धार्थ तथा कपिलवस्तु का जयजयकार सुनाई देता है। युवराज के साथ शाक्येन्द्र गम्भीर गति से प्रवेश करते हैं। उपस्थित-जन यथायोग्य सम्मान प्रदर्शन करता है। कपिलवस्तु की जयजयकार के अनन्तर किशोरियाँ अपने-अपने थाल सामने करती हैं। राजपुरोहित कपूर में अग्नि प्रज्ज्वलित करते हैं। क्रमशः सातों किशोरियाँ, सम्राट् शुद्धोदन तथा युवराज की आरती लेकर कुंकुम तथा अक्षत लगाती हैं। वेदपाठी ब्राह्मण स्वस्तिवाचन आरम्भ करते हैं। युवराज सिद्धार्थ ब्राह्मणों के उच्चारण के प्रति आकर्षित होते हैं। एक स्वर्ण-हल इस भाँति रखा है कि उसमें जुते हुए बैल दिखाई नहीं देते, पिछला आधा भाग ही दिखाई देता है। उस स्वर्ण के बने हुए हल की ओर राज-पुरोहित संकेत करते हैं और युवराज को सम्बोधन करते हैं।

राज-पुरोहित—पधारिये युवराज ! शाक्यवंश की परम्परा का निर्वाह करें।

युवराज सिद्धार्थ हल के समीप आते हैं शाक्येन्द्र तथा अन्य परिजन उनके पीछे खड़े होते हैं।

सिद्धार्थ—(**खिन्नता का भाव धारण करते हुए**) गुरुवर्य ! यह कठोर कार्य मुझे प्रिय नहीं !

राज-पुरोहित—युवराज ! यह परम्परा युग-युगान्तर से चली आ रही है।

सिद्धार्थ—आचार्यवर ! इस समुदाय में मुझे व्यग्रता अनुभव हो रही है।

राज-पुरोहित—कपिलवस्तु के इस हलोत्सव में जन-जन का कल्याण भरा हुआ है। युवराज ! आषाढ़ का यह प्रथम दिवस, कृषकों के लिये स्फूर्ति तथा प्रेरणामय है। आर्द्रा नक्षत्र में क्षितिज के उस छोर पर देखिये, मेघ-खण्डों से झाँकते हुए बाल-रवि का स्वर्णिम रूप, कितना मनोरम लग रहा है। हलोत्सव को देखने का लोभ वह भी नहीं छोड़ सका है।

सिद्धार्थ—गुरुवर्य ! मेरा मन भारी होता जा रहा है।

राज-पुरोहित—काले-काले बादलों की घुमड़ कपिलवस्तु का जयघोष कर रही है। कृषकवर्ग के लिये नव-जीवन का संचार कर रहे हैं, वे काले मेघ ! युवराज, हल का संचालन आरम्भ करें। (**उच्च स्वर**) बैलों को चलाओ !

हल का फाल एक साथ धरती में धँस जाता है, खींचे नहीं खिचता, इस पर बैलों को प्रताड़ना देने के स्वर उभरते हैं। सिद्धार्थ व्यथित हो उठते हैं।

सिद्धार्थ—गुरुवर्य क्षमा ! बैलों को कष्ट हो रहा है। यह मैं नहीं देख सकूँगा।

एक साथ बल लगने पर हल का फाल ऊपर आ जाता है। उसके साथ ही धरती मे से कुछ जीव निकल कर कुलबुलाने लगते हैं, उन्हें देखकर—

यह मुझ से नहीं होगा, आचार्य ! यह कर्म कठोर है।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ, क्या कह रहे हो ? कृषकवृत्ति को शाक्यों का राजपरिवार सम्मान देता आया है। कृषि के अभाव में कपिलवस्तु का जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो जायगा। हमारी समृद्धि कृषि और कपिलवस्तु के कृषकों पर ही आधारित है।

सिद्धार्थ—(**सकरुणा**) किन्तु इस कर्म से मुझे विरक्ति हो रही है, पिताजी !

शुद्धोदन—भ्रम छोड़ें सिद्धार्थ ! मिथ्या धारणाओं से वसुन्धरा की उर्वरा-शक्ति क्षीण होने लगती है। कृषि-कर्म को गौरव दो, सिद्धार्थ ! इस अनुष्ठान को सुचारुरूप से क्रियान्वित करना है, तुम्हें।

सिद्धार्थ—(**सव्यथा**) पिताजी, (**संकेत करते हुए**) देखिये न, हल के कठोर लौह-खण्ड से कितने जीवों की शान्ति भंग हुई है। इनकी पीड़ा मेरी पीड़ा बन रही है।

राज-पुरोहित—(**गम्भीरतापूर्वक**) युवराज, कृषि-कर्म के प्रति उदासीनता से हमारी अन्न-समस्या विकट हो जायगी। तुम्हारी इस भावना से कृषकवर्ग का उत्साह क्षीण हो सकता है। युवराज, परम्परा की रक्षा करो !

सिद्धार्थ—गुरुवर्य ! सूर्य और इन्द्र की पूजा ने मेरे हृदय को मथ डाला है। प्रकृति की मूक वाणी मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाती रही है। आचार्यवर, मेरे प्रशस्त मार्ग में बाधक न हों।

सिद्धार्थ जाने लगते हैं, नन्द, शुद्धोदन आदि उन्हें रोकते हैं। कुछ कृषकवर्ग समीप आता है।

नन्द—रुक जाओ युवराज ! हल न चलावें, न सही, उत्सव में भाग तो लो !

सिद्धार्थ—(**रुकते हुए**) नन्द ! इन उत्सवों में मुझे विषाद दिखाई देता है। इस भीड़ में देख रहा हूँ, अनेक

व्यक्तियों के मुख पर विषाद की रेखाएँ सिंची हुई हैं। कहाँ है, इनके मुख पर हर्ष और प्रसन्नता? यह कृषक, सुख की श्वास कहाँ ले रहा है? (**एक कृषक के समीप पहुँचकर**) इसका सत्य मुझे मालूम है, नन्द।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ, सिद्धार्थ! भावना से कर्त्तव्य ऊँचा है।

सिद्धार्थ—अपराध क्षमा हो पिताजी। इनके हृदय वेदना से भरे हुए हैं। प्रत्येक कृषक एक न एक पीड़ा का भार ढो रहा है। कहाँ है इन देहों में शान्ति? कहाँ है इनकी आत्मा में संतोष?

शुद्धोदन—सिद्धार्थ व्यथा छोड़ो! उत्सव का आनन्द लो!

सिद्धार्थ—पिताजी, जब यह मानव-समुदाय अपने पैरों के आघात से इस वसुन्धरा को रौंद कर चला जायगा तब क्या यहाँ मात्र शून्यता का साम्राज्य नहीं छा जायगा? प्रकृति-नटी ने वन को सज्जित किया है। आज है, कल न होगी यह सज्जा। तब जो कल नहीं रहेगी उसके निमित्त आनन्द क्या? उत्सव क्या? एक शून्यता व्याप जायगी सर्वत्र, तब मनुष्य के आनन्द की रेखाएँ सिकुड़ जायँगी। नीरसता और शुष्कता भर जायँगी, यहाँ, वहाँ! सोचा है, राजकुमार नन्द? नहीं सोचा! कौन सोचता है? कौन विचार करता है? मनुष्य अवसर के साथ दौड़ता है, अवसर बीता नहीं कि फिर वही जड़ता, वही शून्यता।

छन्दक का प्रवेश

छन्दक—युवराज, क्या उत्सव का आनन्द नहीं ले रहे?

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) छन्दक मेरे बन्धु! मेरे प्रश्न का उत्तर दोगे?

छन्दक—अवश्य प्रयत्न करूँगा, युवराज ।

सिद्धार्थ—(**एक सूखे ठूँठ की ओर संकेत करके**) सामने देखते हो, वह सूखा वृक्ष ?

छन्दक—देखता हूँ युवराज ।

सिद्धार्थ—इसके पत्ते, शाखाएँ, उप-शाखाएँ कहाँ चली गईं ?

छन्दक—युवराज, वृक्ष का जीर्ण-पुरातन रूप है यह ! जल का अभाव हुआ, सूर्य का ताप सहन नहीं कर सका, वृक्ष सूख गया ।

सिद्धार्थ—यह सत्य है, वृक्षों में भी जीवन रहा, लता-गुल्मों में जीवन है, कलियों और पुष्पों में भी जीवन है। पुष्पों के समान वृक्ष भी मुरझा जाते हैं, तब क्या ऐसा कोई जीवधारी है जो मुरझाता न हो ?

छन्दक—नहीं है युवराज । प्राणिजगत् का यही सत्य है ।

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) प्रकृति से मिले पदार्थ एक न एक दिन विनाश की ओर बढ़ने लगते हैं···और···और···

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) सिद्धार्थ ! जाओ तुम छन्दक और नन्द के साथ वहाँ बैठो, उस वृक्ष के नीचे ।

तीनों का प्रस्थान । उपस्थित समुदाय हलोत्सव की विधि सम्पन्न करता है ।

छन्दक—(**चलते-चलते**) आओ युवराज वहाँ बैठें, शीतल छाया में ।

सिद्धार्थ—छन्दक, प्रिय मित्र, धरती पर नित्य नया पाठ सीखने को मिल जाता है। जब उसका चिन्तन करता हूँ, तो आत्मा व्यथित हो उठती है। उस व्यथा से मेरा रोम-रोम करुणामय हो जाता है ।

रुकते हैं

नन्द—युवराज, चलो उत्सव होगा, नृत्य-संगीत देख-सुनकर जी का भार हल्का हो जायगा ।

सिद्धार्थ—नन्द ! यह सब मेरे लिये अरुचिकर है। मुझे तो एकान्त ही प्रिय है। छन्दक, सूर्य अस्त हो जाता है, नक्षत्र उदय होते हैं, शशांक नित्य कलाएँ करता रहता है, वृक्ष सूख कर निष्प्राण हो जाते हैं, लता और पुष्प मुरझा जाते हैं। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है, चलता रहेगा। इन प्राचीरों में रहकर यही सब देखा है।

छन्दक—युवराज ! खिन्नता छोड़ना ही हितकर है।

सिद्धार्थ—छन्दक, क्या इन प्राचीरों के बाहर भी यही विधान रचा गया है ? मित्र ! तुम स्वतन्त्र हो, प्राचीरों के बाहर तुम जाते रहते हो, कभी-कभी नन्द भी नगर में हो आते हैं किन्तु मैं……मैं…क्यों नहीं जा सकता ?

छन्दक—वहाँ भी सब कुछ ऐसा ही है, युवराज।

नन्द—हाँ, हाँ, युवराज नगर में भी सब कुछ ऐसा ही होता है, यहाँ से भिन्न कुछ भी नहीं।

सिद्धार्थ—सूर्यास्त और अरुणोदय, निशा और नक्षत्र, वृक्ष और पादव सब कुछ ऐसा ही ?

छन्दक—बिल्कुल ऐसा ही युवराज ?

सिद्धार्थ—(**उत्सुकतापूर्वक**) तब मुझे नगर-भ्रमण के लिये क्यों नहीं जाने…दिया जाता ? मेरे लिये बन्धन क्यों ?

नन्द—यह बन्धन युवराज के लिये क्यों ? छन्दक तुम जानते हो, इसका कारण ?

छन्दक—(**मौन धारणकर शिर हिलाता है**) हाँ, समझा ?

सिद्धार्थ—क्या ? छन्दक मेरे प्रिय सखा, बताओ !

छन्दक—तुम युवराज हो, युवराज को सम्राट् बनना होगा। तुम कपिलवस्तु के नागरिकों पर शासन करोगे।

सिद्धार्थ—(**सचिन्ता**) शासन ! शासन तो पितृश्री कर रहे हैं। सम्राट्…तो पितृश्री हैं !

छन्दक—शाक्येन्द्र शासन कर रहे हैं···और तुम्हें भी शासन करना है ।

सिद्धार्थ—यह भ्रम-जाल कैसा छन्दक ? सत्य क्या है ?

छन्दक—सत्य ! सत्य दोनों हैं युवराज, यह एक परम्परा है ।

सिद्धार्थ—यह परम्परा है ! जो आज है वह कल नहीं जो कल होने वाला है वह आज नहीं ।

छन्दक—नहीं युवराज ऐसा नहीं, जो आज है वह कल भी रहेगा !

सिद्धार्थ—तब यह सत्य रहा ?

छन्दक—नहीं, यह परम्पपरा है, आज है उसे निरन्तर स्थायी पद देना है, शासक शाक्येन्द्र भी और युवराज भी । समझे !

सिद्धार्थ—यह भ्रम-जाल है, छन्दक । सत्य नहीं ।

छन्दक—युवराज दोनों ही सत्य हैं······दोनों सत्य, एक आज तो दूसरा कल ।

सिद्धार्थ—**(चिन्तनग्रस्त होकर)** दोनों सत्य हैं ! दोनों सत्य हैं ! एक आज और दूसरा कल !

छन्दक—हाँ, बिल्कुल ऐसा ही ! युवराज बिल्कुल ऐसा ही ।

शुद्धोदन सिद्धार्थ के पास पहुँचते हैं ।

शुद्धोदन—चलो, वत्स प्रासाद चलें !

चिन्तनमुद्रा में सिद्धार्थ चलने लगता है, उसके साथ अन्य सब

•

यवनिका

अंक एक—दृश्य : चार

अरुणोदय :

कपिलवस्तु : दृश्य दूसरे के अनुसार राज-प्रासाद का उद्यान :

राजकुमार देवदत्त तथा आनन्द वाटिका में भ्रमण करते हुए दिखाई देते हैं। देवदत्त के बायें कन्धे के पीछे की ओर तूणीर बँधा हुआ है, उसमें बाण दिखाई दे रहे हैं उसके बाँये हाथ में धनुष तथा दाहिने हाथ में एक बाण है। आनन्द के हाथ में एक खिला हुआ पुष्प है। गंध मधुर है, उसे रहरहकर सूँघने से आनन्द का मन खिल उठता है। सहसा आकाश में हंसों की एक टोली उड़ती हुई दिखाई देती है। आनन्द का मन प्रसन्नता से भर जाता है किन्तु देवदत्त गम्भीरता धारण करता हुआ धनुष पर बाण चढ़ाकर, उसे हंसों की टोली पर छोड़ देता है और दोनों एक ओर चले जाते हैं। बाण एक हंसिनी को लगता है, चीत्कार करती हंसिनी धरती पर आ-गिरती है। हंसिनी का चीत्कार सुनकर हंस-समूह करुण ध्वनि कर उठता है। इसी बीच सिद्धार्थ, नन्द तथा छन्दक आ जाते हैं। हंसिनी को देखकर वे सब उस ओर बढ़ते हैं।

सिद्धार्थ—(**हंसिनी को घायल देखकर**) अरे, हंसिनी आहत हो गई है ! छन्दक⋯ ⋯पीड़ा से कराह रही है।

छन्दक—युवराज ! किसी ने आखेट किया है।

सिद्धार्थ हंसिनी को उठाकर अपनी गोद में ले लेते हैं और बाण निकालने की चेष्टा करते हैं।

सिद्धार्थ—(**हंसिनी की पीड़ा को अनुभव कर, व्यथित होते हुए**) पक्षी की पीड़ा⋯⋯छन्दक, नन्द !

मुक्ताहारिणी का करुण क्रन्दन ! अभागा… (**बाण निकालकर एक ओर फेंकते हुए हैं**) …पक्षी !

छन्दक—युवराज, छोड़दो इसे !

सिद्धार्थ—छन्दक, पक्षी की पीड़ा तुम नहीं समझ पाओगे ! (**हंसिनी का आहत भाग हाथ से दबाते हुए**) मेरी आत्मा का रुदन तुम नहीं सुन पाओगे, छन्दक !

नन्द—युवराज, पक्षी के प्रति इतनी करुणा प्रकट करना शोभा नहीं देता। छोड़ दो, युवराज। जिसका आखेट होगा ले लेगा।

सिद्धार्थ—(**सविस्मय**) आखेट ! किसका होगा आखेट ?

तीव्र गति से देवदत्त तथा आनन्द का प्रवेश

देवदत्त—युवराज यह मेरा आखेट है।

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) राजकुमार देवदत्त का आखेट ! यह हंसिनी…आखेट !

देवदत्त—हाँ, यह मेरे बाण से घायल हुई है। लाओ इसे मुझे दो।

सिद्धार्थ—आखेट तुम्हारा हो सकता है देवदत्त किन्तु हंसिनी अब मेरे अधिकार में है।

देवदत्त—इस पर मेरा अधिकार है।

सिद्धार्थ—ऐसा नहीं होगा, राजकुमार देवदत्त ! इसके प्राणों की रक्षा मैंने की है और अधिकार तुम्हारा ? आश्चर्य ! देवदत्त आश्चर्य !

देवदत्त—मैंने बाण छोड़ा, हंसिनी आहत हुई। अतः अधिकार मेरा है। (**धरती पर पड़े बाण को उठाकर दिखाता हुआ**) देखो, मेरा बाण !

सिद्धार्थ—(**हंसिनी पर हाथ फेरते हुए**) ठीक कह रहे हो देवदत्त। निःसन्देह यह बाण तुम्हारा ही है। इसी बाण के आघात से हंसिनी गिरी है, किन्तु अब यह पक्षी मेरा है, मेरा शरण में है।

देवदत्त—यह पक्षी मेरा है। युवराज विवाद न बढ़ाओ !

सिद्धार्थ—विवाद शान्त कर रहा हूँ, मैं इसकी रक्षा करूँगा।

उद्विग्न होते हुए आनन्द का प्रस्थान

सिद्धार्थ—राजकुमार, **(पक्षी को अपने कपोल पर लगाते हुए)** पक्षी पर दया करो। हंसिनी व्यथापूर्ण नेत्रों से मेरी ओर देख रही है। पक्षी की पीड़ा देखकर भी तुम्हारे हृदय में करुणा जन्म नहीं लेती। पीड़ित पक्षी के संरक्षण का भार मेरे पास रहने दो, देवदत्त।

छन्दक—युवराज, दे दो पक्षी !

सिद्धार्थ—नहीं, छन्दक नहीं !

देवदत्त—युवराज ! **(कठोरता प्रदर्शन कर)** सिद्धार्थ यह पक्षी मेरा है।

सिद्धार्थ—**(विनय प्रदर्शन कर)** मैं तुमसे—देवदत्त राजकुमार से पक्षी की भिक्षा माँगता हूँ।

देवदत्त—**(साश्चर्य : व्यंगपूर्वक)** भिक्षा ! युवराज होकर पक्षी की भिक्षा !

सिद्धार्थ—पक्षी में मेरी रुचि जागृत हो गई है।

देवदत्त—युवराज को हंसिनी के मोह ने चंचलवृत्ति बना दिया है। **(दर्पपूर्वक)** युवराज यदि पक्षी से मोह है, तो तुम भी प्राप्त करलो, लो ! धनुष-बाण **(धनुष-बाण देने का उपक्रम)** और देखो, उच्च आकाश में हंसों की टोली।

संकेत करता हुआ धनुष-बाण पुनः सिद्धार्थ की ओर बढ़ाता है।

सिद्धार्थ—राजकुमार, आखेट में मेरी रुचि नहीं है।

देवदत्त—किन्तु मुझे है। मेरी उपलब्ध वस्तु पर मेरा अधिकार है।

सिद्धार्थ—अधिकार ?

देवदत्त—हाँ, युवराज अधिकार ।

सिद्धार्थ—देवदत्त हंसों का मोह नहीं है । मैं मूक, निरीह प्राणियों के प्राण लेना नहीं चाहता । मैं तो उनके प्राणों को सबल और समर्थ देखना चाहता हूँ । इस पक्षी को मैं अपनी सेवा और सहानुभूति से समर्थ बना दूँगा ।

देवदत्त—किन्तु इस पर मेरा अधिकार है, जैसा उचित-अनुचित होगा, मैं इसके साथ व्यवहार करूँगा ।

सिद्धार्थ—तुम्हारे बाण ने इसका जीवन छीन लेने का प्रयत्न किया था, वह असफल रहा, मेरा दुलार इसे जीवन देगा । राजकुमार तुम्हारे शस्त्र ने इसे पीड़ा दी है, मेरी सेवा इसका कष्ट दूर करेगी । यह फिर आकाश में विहार करेगी !

देवदत्त—(**कठोरतापूर्वक**) युवराज ! छोड़दो इसे !

सिद्धार्थ—राजकुमार मेरा अनुरोध स्वीकार करो !

देवदत्त—अनुरोध ?

सिद्धार्थ—हाँ, तुम्हारा शस्त्र रक्षण के लिये उठे किसी प्राणी को प्रताड़ना पहुँचाने के लिये नहीं ।

देवदत्त—यह कायरता है, हम क्षत्रिय हैं । शस्त्राघात करना हमारा कर्म है ।

सिद्धार्थ—किन्तु क्षत्रिय का कर्म शान्त-वृत्ति धारण करने वाले प्राणियों को पीड़ा पहुँचाना नहीं है । आक्रान्ता के विरुद्ध शस्त्र-प्रयोग उचित है, आवश्यक है, और यदि उसका समाधान भी शान्तवृत्ति से हो सके तो उस अवसर को भी नहीं चूकना चाहिये ।

आनन्द के साथ शाक्येन्द्र तथा संथागार के कुछ प्रतिनिधियों का आगमन

देवदत्त—महाराज, मेरा पक्षी युवराज नहीं दे रहे ।

शुद्धोदन—दे दो वत्स ! यह पक्षी देवदत्त का है ।

देवदत्त—मेरे बाण से गिरा है यह ।

शुद्धोदन—हम दिलाये देते हैं···तुम्हारा पक्षी । राजकुमार धैर्य रखो ।

देवदत्त—मेरा आखेट मुझे मिलना चाहिये ।

सिद्धार्थ—नहीं, पिताजी नहीं । (**करुणा में भर कर**) यह हंसिनी मेरी है । राजकुमार देवदत्त ने इसे घायल किया, मेरी सेवा-सुश्रुषा से बच गई है । हंसिनी उड़ने में समर्थ हो जाय तब मैं इसे छोड़ दूँगा । तब तक इस पर मेरा अधिकार है ।

शुद्धोदन—वत्स, यह आखेट तो देवदत्त का है । जिसका आघात लगा पक्षी उसी का हुआ । यह मृगया का नियम है ।

सिद्धार्थ—पितृदेव ! क्षमा करें, सेवा से मैंने इसके प्राण बचाए हैं । अतः इस पर मेरा अधिकार रहना चाहिये । राजकुमार देवदत्त का बाण यदि पक्षी के प्राण ले लेता तो इस पर इनका अधिकार हो जाता, किन्तु मैंने इस पक्षी को शरण में लिया है, अस्तु इसकी रक्षा का भार मेरा है । मूक पक्षियों की हत्या हमारा कर्त्तव्य नहीं ।

देवदत्त—सुना महाराज ! युवराज ने स्पष्ट कर दिया है, मृगया-धर्म का पालन हो !

सिद्धार्थ—पितृश्री मेरे पक्ष का आधार करुणा है । पक्षी मेरा है ।

सहसा झुरमुट से एक वृद्ध तपस्वी का स्वर : सब विस्मयपूर्वक उस ओर देखते हैं ।

स्वर—राजन्, भ्रम में हो ! राजकुमार देवदत्त का पक्ष निर्बल है । हंसिनी पर युवराज सिद्धार्थ का अधिकार है । शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का धर्म है । राजन् ! मारक से रक्षक बड़ा होता है ।

पक्षी के मर जाने पर, अवश्य राजकुमार देवदत्त का अधिकार हो जाता।

सिद्धार्थ—सुना राजकुमार ! देववाणी भी मेरा समर्थन कर रही है।

देवदत्त—यह सब भ्रम है। महाराज मेरी हंसिनी मुझे मिले।

एक प्रतिनिधि—देववाणी ! (**विस्मयपूर्वक**) देववाणी का स्वागत करना चाहिये, शाक्येन्द्र !

शुद्धोदन—राजकुमार, हमें अपनी भूल ज्ञात हुई। मारने वाला और बचाने वाला दो व्यक्ति हैं। मारने वाले व्यक्ति ने पक्षी को आहत किया, उसे मृत्यु का आलिंगन करने को विवश किया, उसका अस्तित्व मिटाने की योजना बनाई। राजकुमार, संहारक व्यक्ति के पीछे एक कलुषित भावना होती है, उसकी भावना में जीवन-शून्यता होती है। जब वह किसी का अस्तित्व मिटा देना चाहता है तो फिर उसका अस्तित्व कहाँ रहा ? दूसरे व्यक्ति—रक्षक ने पक्षी को जीवन दिया है, उसने उसकी समृद्धि और विकास के अंकुर पनपाये हैं, उसने उसे विश्व के प्रांगण में स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण योग्य बनने में योग दिया है, उसका अस्तित्व बना रहा, अतः पक्षी पर रक्षक का अधिकार रहा। देववाणी का हमें आदर करना चाहिये देवदत्त।

देवदत्त—महाराजश्री, यह अन्याय है। यह न्याय युवराज को शान्ति दे सकता है किन्तु यह निर्णय देवदत्त के हृदय में द्वेषांकुर पैदा कर देगा।

शुद्धोदन—(**सविस्मय : सचिन्ता**) राजकुमार देवदत्त !

सिद्धार्थ—राजकुमार, प्रतिशोध की भावना को जन्म न दो। प्रतिहिंसा की भावना उचित नहीं। क्रोध अशान्ति

का जनक है राजकुमार ! करुणा का पक्ष समर्थ देखकर भी प्रतिहिंसा के द्वार पर खड़े होना चाहते हो ? राजकुमार देवदत्त, करुणा के साथ क्रूरता को न घसीटें। करुणा एक निरन्तर बहने वाला स्रोत है, मन का अविवेक उसमें धो डालो।

देवदत्त—(**सावेश**) युवराज !

सिद्धार्थ—आवेश को जन्म न दो बन्धु ! करुणा में मानव का कल्याण छिपा है।

देवदत्त—सिद्धार्थ, रहने दो अपनी करुणा का पाठ। देवदत्त उपदेश सुनने का अभ्यस्त नहीं है।

सिद्धार्थ—बन्धु, यह उपदेश नहीं है, मेरी आत्मा का अनुरोध है।

शुद्धोदन—राजकुमार देवदत्त, विवेक का परित्याग मत करो। तुम आयु में बड़े हो।

सिद्धार्थ—राजकुमार देवदत्त, केवल अवस्था-भेद हमारे और तुम्हारे बीच बाधक नहीं। करुणा, दया और सत्य का अधिकारी तो प्रत्येक व्यक्ति है। एक सामान्य प्रेरणा से मानव में विवेक जागृत हो जाता है।

देवदत्त—सिद्धार्थ, मेरा धनुष-बाण समर्थ है। विवेक-अविवेक का निर्णय मेरा धनुष-बाण करता है।

शुद्धोदन—(**सदर्प**) देवदत्त !

सिद्धार्थ—राजकुमार, धनुष-बाण पर अभ्यास किया है तुमने, तुम शर-संधान में निपुण हो ! धनुर्विद्या मैंने भी सीखी है। शर-संधान मैं भी कर सकता हूँ…किन्तु हिंसा मेरा कर्म नहीं है।

देवदत्त—(**हँसता हुआ**) शर-संधान ! शर-संधान तुम क्या जानो युवराज !

सिद्धार्थ—जानता हूँ राजकुमार ! लक्ष्य पर आघात करन भलीभाँति जानता हूँ। विश्वास नहीं होता !

देवदत्त—(सगर्व) जिसे मृगया प्रिय नहीं वह शर-संधान क्या करेगा ? (**हँसता है**) सिद्धार्थ, लो, यह धनुष-बाण और गिराओ आकाश में उड़ते किसी पक्षी को !

सिद्धार्थ—पक्षी को तो नहीं गिरा सकता। हाँ, लक्ष्य-भेद में पीछे नहीं रहूँगा। लाओ धनुष और बाण मुझे दो। मेरा लक्ष्य देखना चाहते हो ?

देवदत्त—लो ! देखता हूँ कितना अचूक है तुम्हारा लक्ष्य ? **धनुष-बाण देता है।**

सिद्धार्थ—(**धनुष-बाण ग्रहणकर**) राजकुमार ! देख रहे हो वह सूखा वृक्ष···निर्जीव !

देवदत्त—हाँ, देख रहा हूँ।

सिद्धार्थ—उस निष्प्राण वृक्ष की सबसे पतली शाख पर एक चिह्न बना दो। मेरा बाण उसी चिह्न पर लगेगा।

शुद्धोदन—(**हर्षित होते हुए**) युवराज !

देवदत्त एक शाख पर चिह्न अंकित कर पुनः वहीं आकर सिद्धार्थ की ओर देखता है। सिद्धार्थ बाण छोड़ते हैं, बाण उसी चिह्न पर जाकर लगता है। किन्तु धनुष टूट जाता है। यह देखकर शुद्धोदन, छन्दक एवं नन्द प्रसन्नता प्रदर्शित करते हैं किन्तु देवदत्त में रोष एवं ईर्ष्या का भाव प्रकट होता है।

देवदत्त—(**सरोष**) युवराज, तुमने मेरा धनुष तोड़ दिया। यह छलना है, तुम्हारी।

सिद्धार्थ—राजकुमार ! सावधान ! वाणी पर संयम रखो। मेरे मन में तुम्हारे प्रति दुर्भावना नहीं है। तुम्हारा धनुष तोड़ने में मेरी कोई सिद्धि नहीं।

देवदत्त—(**सदर्प**) युवराज-पद मिला है तुम्हें, यह तुम्हारा सौभाग्य है।

सिद्धार्थ—भ्रम में हो राजकुमार।

देवदत्त—तुम्हारे और मेरे बीच युवराज-पद ही बन्धन बनकर आ-खड़ा हुआ है ।

शुद्धोदन—(**सरोष**) देवदत्त ! उत्तेजित न हो ।

सिद्धार्थ—राजकुमार, तुम में भ्रम प्रतिष्ठित हो गया है । तुम्हारे मानस में विद्वेष की भावना भर गई है । राजकुमार ! (**गम्भीरतापूर्वक**) युवराज-पद मैं तुम्हारे पक्ष में छोड़ने को उद्यत हूँ ।

देवदत्त- युवराज, देवदत्त ने भिक्षा-ग्रहण करना नहीं सीखा । मैं समर्थ हूँ ।

शुद्धोदन—(**गम्भीरतापूर्वक**) देवदत्त शान्त हो ! सिद्धार्थ की शान्ति-भावना और तुम्हारा क्रोध दोनों में महान् अन्तर है, चलो ।

देवदत्त—किन्तु मेरा धनुष ! मेरा आखेट, प्रतिशोध ! प्रतिशोध !

सिद्धार्थ—शान्त हो बन्धु !

तीव्रगति से देवदत्त का प्रस्थान

●

यवनिका

अंक : एक—दृश्य : पाँच

प्रभातवेला :

कपिलवस्तु : दृश्य दूसरे के अनुसार राजप्रासाद का उद्यान : उद्यान के लतामण्डपों के समीप छन्दक तथा उसकी माता अन्ना पुष्प चयन करते हुए दिखाई देते हैं।

अन्ना—छन्दक, जल्दी कर, महादेवी देव-मन्दिर के लिये प्रतीक्षा कर रही होंगी !

छन्दक— (**पुष्प देते हुए**) ये लो माँ, इतने पुष्प तोड़ लिये हैं।

अन्ना— (**पुष्प लेती हुई**) ला छन्दक ! महादेवी को पूजा में देर न हो जाय ! हाँ, तू जा, युवराज को विहार के लिये लिवा ला !

अन्ना एक ओर जाने लगती है कि सिद्धार्थ का दूसरी ओर से आगमन।

छन्दक—माँ, युवराज आ गये !

अन्ना—(**चौंककर**) युवराज आ गये (**स्वस्थ होती हुई**) युवराज, आज छन्दक तुम्हें लेने नहीं आ सका। वह बड़ा आलसी होता जा रहा है।

सिद्धार्थ—अन्ना !

पुष्पों को देखकर गम्भीर मुद्रा बना लेते हैं।

अन्ना—युवराज, गम्भीरता क्यों धारण कर रखी है ? (**मुस्कराने का उपक्रम करती हुई**) महादेवी को फूल दे आऊँ, अन्यथा वे मुझ पर क्रोध करेंगी। अभी आती हूँ।···युवराज !

जाने लगती है।

सिद्धार्थ—अन्ना, मैं प्रतीक्षा करूँगा !

अन्ना—(**जाते-जाते**) अभी लौटती हूँ।

छन्दक—आओ युवराज घूमें, आज बड़े-बड़े फूल खिले हैं ! चलो, (**संकेत करके**) उधर चलें ।

सिद्धार्थ—छन्दक, तुम समय पर नहीं आये ?

छन्दक—युवराज, फूल चुनने में माँ को आज देर हो गई थी, मुझे उसका हाथ बटाना पड़ा इसीलिये देर हुई ! आओ युवराज !

सिद्धार्थ—छन्दक, मेरा मन नहीं लग रहा था ।

छन्दक—(**विनय प्रदर्शित करते हुए**) युवराज ! बड़े दयालु हैं ।

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) छन्दक ! (**छन्दक के कन्धे पर हाथ रखते हुए**) क्या तुम दयालु नहीं हो ! तुम में भी करुणा हो सकती है छन्दक !

छन्दक—युवराज !

द्रुतगति से अन्ना का प्रवेश

अन्ना—युवराज ! अभी तक यहीं रुके हुए हैं ?

सिद्धार्थ—अन्ना ! कितनी ही लताएँ पुष्पहीन हो गई हैं ! तुम नित्य पुष्प तोड़ती हो न ।

अन्ना—युवराज, देव-मन्दिर में फूल चढ़ाये जाते हैं । देवता पर फूल···

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) देवता पर पुष्प चढ़ाये जाते हैं ! क्या पुष्प ने स्वयं खिल कर देवता को समर्पित नहीं कर दिया है ? देव तो सर्वव्यापी हैं अन्ना ।

अन्ना—युवराज !

अन्ना विस्मयपूर्वक देखती रह जाती है ।

सिद्धार्थ—(**संकेत करके**) श्रीविहीन बल्लरियाँ मुझे प्रिय नहीं लगतीं । उनका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है अन्ना !

अन्ना—(**मुस्कराने का उपक्रम करती हुई**) सुन्दरता सबको प्रिय है । मेरे युवराज को भी (**मुस्कराती है**) सुन्दरता भली लगती है !

सिद्धार्थ—किन्तु अन्ना, जब तुम पुष्प तोड़ कर चली जाती हो, तब मैं उन लताओं को देखता हूँ, तो मैं मन मसोस कर रह जाता हूँ, अन्ना मेरा मन करुणा से भर जाता है।

अन्ना—(**हाथ हिलाकर**) अब मैं यहाँ से फूल नहीं तोड़ूँगी। युवराज की वाटिका से फूल-पत्ती कुछ भी नहीं तोड़ूँगी। (**सिद्धार्थ का ध्यान बदलने की दृष्टि से**) युवराज ग्रीष्म-प्रासाद देखा ?

सिद्धार्थ—ग्रीष्म-भवन ! पिताजी ने वर्षा और शरद्-भवनों के पश्चात् ग्रीष्म-भवन बनवाया है।

अन्ना—युवराज की सुख-सुविधा का ध्यान रखना ही होगा।

सिद्धार्थ—अन्ना ! मैं अनुभव कर चुका हूँ। शीतकाल में—कड़कड़ाती शीत में कर्मकारों के गात ठिठुर-ठिठुर जाते थे। जब हम शीत से बचने के लिये नित्य नये साधन प्रयोग में लाते रहे, तब वे वेतनभोगी कर्मकार सहिष्णुता दिखलाते रहे।

अन्ना—युवराज, अपना-अपना भाग्य है।

सिद्धार्थ—अपना-अपना भाग्य ! अन्ना, ग्रीष्म की तपती धूप में उसी कर्मकारवर्ग ने अपना पसीना बहाया है, सूर्य के प्रचण्ड ताप को सहन किया है, और हमारे लिये, शिर छिपाने के लिये, आश्रय बनवाया है—ग्रीष्म-प्रासाद। हम उस भवन में आनन्द और सुख भोगेंगे !

अन्ना—युवराज ऐसा ही होगा !

सिद्धार्थ—प्रजा के शोषितवर्ग के परिश्रम, त्याग और धैर्य की नींवों पर हमारे विशाल भवन खड़े किये जा रहे हैं। यह सब किसलिये ? क्यों ? अन्ना क्यों ?

अन्ना—युवराज, व्यर्थ चिन्ता करते रहते हैं।

सिद्धार्थ—नहीं, अन्ना नहीं। मेरी चिन्ता व्यर्थ नहीं है। ये

विशाल भवन इसलिये खड़े किये जा रहे हैं कि उनमें निवास करके हम राज-पुरुषों की देह आराम पाये।

अन्ना—युवराज को प्रभु का वरदान मिला है।

सिद्धार्थ—प्रभु का वरदान ! अन्ना जब मैं जन-साधारण और राज-पुरुषों में भेद का चिन्तन करता हूँ तो मेरे हृदय में मन्थन होने लगता है, उस मन्थन से करुण रस उदय होता है और सामान्यजन के प्रति मन में करुणा भर जाती है।

अन्ना—युवराज की आत्मा महान् है।

सिद्धार्थ—इस भेद को देखकर मेरी आत्मा में पीड़ा भर जाती है। सोचता हूँ, जब इन प्रासादों में, इन ऋतु के अनुकूल बने भवनों में मैं रह सकता हूँ तो दूसरे लोग रहने से क्यों वंचित हैं। यह (**संकेत करके**) छन्दक इस सुख का अधिकारी क्यों नहीं ?

अन्ना—युवराज, चित्त में शान्ति धारण करें।

सिद्धार्थ—अन्ना, छन्दक मेरी शैया पर नहीं बैठ सकता। दूसरे उसपर नहीं सो सकते। अन्ना, यह भेदभाव क्यों ?

अन्ना—मनुष्य के जीवन में भाग्य प्रधान होता है युवराज !

सिद्धार्थ—हमारी ये धारणाएँ ही भाग्य का खेल बन गयी हैं। शासकवर्ग श्रमिकवर्ग से इच्छापूर्ति का अभिलाषी है। मैं क्यों युवराज हूँ ? दूसरे क्यों नहीं ? संसार में ये लघु और महान् की दीवारें क्यों खड़ी करदी गई हैं। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का शोषण कर रहा है। क्यों लघु पर महान् का अधिकार है ? क्यों ? अन्ना यह सब देख कर मेरी आत्मा पीड़ित हो उठी है।

अन्ना—मन से पीड़ा को निकाल दीजिये, युवराज !

सिद्धार्थ—अन्ना, उस दिन उत्सव में मैंने अनुभव किया था, असंख्य जीवों की हत्या हुई थी। उस विशाल जन-समूह के पदाघातों से असंख्य जीव मर

गए थे। आज कहाँ है वह आयोजन ? वह उत्सव ! वह निनादित जय-घोष शून्यता में समा गया। जन-समुदाय आनन्द मनाने आया था, हर्ष-आनन्द मनाता चला गया, किन्तु वह मेरे हृदय को पीड़ा पहुँचा गया है।

अन्ना—युवराज ! युवराज !!

सिद्धार्थ—अन्ना, मुझे नहीं सुहाते ये ऊँचे-ऊँचे प्रासाद ! मुझे तो मेरी यह बाटिका प्रिय है। हर घड़ी, हर पल यहीं रहना चाहता हूँ। इस प्रकृति में मुझे भला लगता है। प्रकृति मनुष्यमात्र की शिक्षिका है अन्ना। मैं इसी से कुछ सीख सकूँगा। प्रकृति ही मेरी शिक्षिका होगी।

अन्ना—युवराज छोड़ो यह व्यथा ! तुम्हें राजा होना है। कपिलवस्तु पर शासन करना है।

सिद्धार्थ—मुझे नहीं भोगना यह सुख ! मुझे तो मेरा एकान्त ही प्रिय है। आओ छन्दक, उस (**संकेत**) लता-मण्डप के समीप बैठें।

छन्दक—हाँ, चलो युवराज !

अन्ना—मैं जाती हूँ। छन्दक, ध्यान रहे, युवराज को कष्ट न हो।

छन्दक—जानता हूँ, माँ।

अन्ना का प्रस्थान। छन्दक तथा सिद्धार्थ एक लता-मण्डप के पास बैठ जाते हैं।

सिद्धार्थ—छन्दक, देखो सुन्दर तितलियाँ (**कुछ दूर पर संकेत करके**)···कितनी सुहावनी मालूम हो रही हैं।

छन्दक—फूलों पर मुग्धतापूर्वक नृत्य कर रही हैं।

सिद्धार्थ—(**प्रसन्नता का प्रदर्शन कर**) आज दिन भर तितलियों का नर्त्तन देखेंगे ! कैसे सुहावने पुष्प खिल रहे हैं।

छन्दक—युवराज ! वह देखो (**कुछ दूर पर संकेत करके**) उस झुरमुट के नीचे मेढ़क !

सिद्धार्थ—अरे, हाँ ! कैसी ऊँची गर्दन उठाये देख रहा है !

सहसा मेढ़क एक तितली को निगल जाता है !

सिद्धार्थ—छन्दक, मेढ़क एक तितली को निगल गया !

छन्दक—सम्भव है दूसरी तितली को भी पकड़े !

सिद्धार्थ की व्यग्रता बढ़ती है

और देखो युवराज वह सर्प !

सिद्धार्थ—सर्प ! (**विस्मयपूर्वक**) मेढ़क के पास ! अरे, सर्प मेढ़क को निगल गया ! (**व्यथा के साथ**) सर्प मेढ़क को खा गया। यह क्या हो रहा है, छन्दक, ऐसा क्यों ?

छन्दक—युवराज, मेढ़क सर्प का भोजन है।

सिद्धार्थ—(**सव्यथा**) और मेढ़क का भोजन तितली !

छन्दक—तितली और छोटे-छोटे जीव !

सिद्धार्थ—कितना करुणामय दृश्य है।

सहसा एक मयूरी उसी झुरमुट के पास गिरती है।

छन्दक, मयूरी !

छन्दक—सर्प से लड़ेगी !

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) सर्प से मयूरी लड़ेगी !

छन्दक—हाँ, युवराज देखते रहिये।

सिद्धार्थ—अरे हाँ, सर्प और मयूरी में द्वन्द्व होने लगा। सर्प फुँकारता है मयूरी दूर हटती है और···अवसर पाकर उसके फन पर आक्रमण करती है।

छन्दक—सर्प मर जायगा !

सिद्धार्थ—(**सव्यथा**) सर्प मर जायगा ?

छन्दक—हाँ, निश्चय ही मर जायगा। लो, मर भी गया।

सिद्धार्थ—मैं उसे बचाऊँगा, सम्भव है अभी उसमें जीवन शेष हो !

छन्दक—नहीं, युवराज, नहीं !

सिद्धार्थ उठकर कुछ आगे बढ़ना चाहते हैं, छन्दक रोकता है। इसी बीच एक श्येन पक्षी उड़ता-उड़ता उस। सर्प पर गिरता है और उसे अपने पंजों में उठा कर ऊपर उड़ जाता है। थोड़ी देर में श्येन भी आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है। इस व्यथा-पूर्ण दृश्य को देखकर उनकी आत्मा द्रवित हो उठती है।

सिद्धार्थ—यह क्या छन्दक ? एक के पश्चात् दूसरे का अस्तित्व समाप्त हो गया। छन्दक ! श्येन को बाण किसने मारा ? अद्भुत योग बना !

छन्दक—युवराज, विश्व में एक-एक का भक्षक है।

सिद्धार्थ—(**चिन्तनग्रस्त मुद्रा में**) तितली को मेढ़क खा गया, मेढ़क को साँप निगल गया। मयूरी ने सर्प को मार दिया···और श्येन को किसने मारा छन्दक ?

छन्दक—किसी आखेटक ने श्येन के प्राण हर लिये।

सिद्धार्थ—आखेटक ! ··· ··· बधिक ! और (**गहन चिन्तनपूर्ण स्थिति में**) और ··· बधिक को कौन मार सकता क्या है ? बधिक नहीं मरेगा ?

छन्दक—युवराज एक दिन बधिक भी मर जायगा।

सिद्धार्थ—बधिक भी मर जायगा ! पर कौन मारेगा उसे ?

छन्दक—मनुष्य भी नहीं रहता युवराज। मनुष्य को भी कोई न कोई खा जायेगा। तभी पूरी होगी यह जीवन और मृत्यु की श्रृङ्खला।

सिद्धार्थ वहाँ से चलकर एक वृक्ष का आश्रय लेकर चिन्तन मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। छन्दक उनके पास ही खड़ा रह जाता है।

सिद्धार्थ—(**सव्यथा : चिन्तनपूर्वक**)...जीवन से मृत्यु की ओर अद्‌भुत है यह शृङ्खला। छन्दक पीड़ा से मेरा मन ओतप्रोत हो गया है। यह हिंसा है। कितनी भयानकता है इस हिंसा में।...कोई सुरक्षित नहीं।...किसी का संरक्षण नहीं। छन्दक तब... तब मनुष्य की भी यही स्थिति होगी? वह भी एक एक की हिंसा पर उतारू हो उठता होगा। छन्दक विश्व में कोई चैन से नहीं रहता!

छन्दक—चलो युवराज, प्रासाद चलें। वहाँ शान्ति मिलेगी।

सिद्धार्थ—(**सव्यथा**) यहाँ भी चैन नहीं। प्रासाद में भी मन नहीं लगता। कहाँ है चैन-शान्ति? छन्दक मुझे सोचने दो, मुझे समझने दो कहाँ है शान्ति? कहाँ है चैन?

छन्दक—युवराज, चिन्ता से स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। चलो!

सिद्धार्थ—(**गम्भीरता धारण करते हुए**) छन्दक! यह शृङ्खला है—पीड़ा और प्रताड़ना की एक गुत्थी! एक की हत्या दूसरे का जीवन! एक का विष दूसरे के लिये अमृत! एक प्रकाश तो दूसरा अन्धकार!

सिद्धार्थ गहन चिन्तन में भर जाते हैं।

छन्दक—युवराज! (**विस्मय करता हुआ**) छोड़ो यह सब!

सिद्धार्थ—(**गहन चिन्तन मुद्रा**) एक दिवस है तो दूसरा रात्रि! सूर्य अपना अस्तित्व रात्रि में, घोर निराशामय रात्रि में खो देता है। छन्दक! एक गीत है तो दूसरा रुदन!

छन्दक—(**विस्मयपूर्वक सिद्धार्थ के मुख की ओर देखता है**) रात दिन यही खेल खेला जा रहा है युवराज!

सिद्धार्थ—छन्दक ! सर्वत्र प्रकृति की गोद में निरन्तर बहने वाली पीड़ा समाई हुई है। वृक्ष, लता, झुरमुट, पुष्प, तितली, मेढ़क, सर्प, श्येन, सब इसी शृङ्खला में बँधे हैं। किन्तु बधिक कहाँ है? इस शृङ्खला में कहाँ है उसका स्थान ? एक रहस्य—एक महान् रहस्य ! छन्दक, सत्य अधूरा है, कड़ी पूरी कहाँ हुई ? बधिक···मनुष्य ! मनुष्य··· इस सत्य को खोजना है। मेरी आत्मा इस सत्य को—इस रहस्य को खोजना चाहती है। छन्दक ! छन्दक मित्र !

सिद्धार्थ गम्भीर मुद्रा में छन्दक की विस्मयपूर्ण बनी आकृति पर अपने नेत्र गड़ा देते हैं।

●

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : एक

वही पूर्ववत् काल :

रात्रि का प्रथम-प्रहर :

कपिलवस्तु : सिद्धार्थ के ग्रीष्म-भवन का प्रमोद-कक्ष :

कक्षभवन तत्कालीन सज्जा के उपकरणों से भलीभाँति सजा हुआ है। अनेक प्रकार की श्वेत तथा काले पत्थर की कुछ छोटी तथा कुछ बड़ी प्रतिमाएँ जहाँ-तहाँ रखी हुई हैं। कक्ष के सामने सबसे पीछे के भाग में एक विशाल नारी प्रतिमा दिखती है। उसकी अंजलि में नवजात शिशु है। इसके अतिरिक्त श्वेत पत्थर की एक बड़ी नारी प्रतिमा दिखाई देती है। यह प्रतिमा नारी-देह-सौष्ठव तथा सौन्दर्य की प्रतीक है। कुछ आधार-स्तम्भों पर शिव-पार्वती, रति और कामदेव, शकुन्तला तथा भरत, सीता और राम की कुछ प्रतिमाएँ दिखाई देती हैं। स्वर्ण-शैया पर रेशमी वस्त्र बिछे हैं। कुछ स्वर्ण-पीठिकाएँ भी दिखाई देती हैं। एक झूला कलात्मक आकृति का दिख रहा है। उसके पास ही एक रजत आसन्दी है। एक तरुणी परिचारिका कक्ष की व्यवस्था देखकर चली जाती है। सौन्दर्य-प्रतिमा के सामने दूसरी ओर एक बड़ा दर्पण है जिसमें उस प्रतिमा का प्रतिबिम्ब दिखता है। यशोधरा अपनी सखी प्रियम्वदा के साथ गजगति से कक्ष में प्रवेश करती है। इधर-उधर दृष्टि डालती हुई दोनों झूले के पास आती हैं। यशोधरा झूले पर तथा प्रियम्वदा पास रखी हुई रजत-आसन्दी पर बैठती हैं। यशोधरा का प्रतिबिम्ब दर्पण में पड़ता है जिसे प्रियम्वदा देख रही है।

यशोधरा—प्रियम्वदा क्या देख रही है?

प्रियम्वदा—(**प्रसन्न मुद्रा में सामान्य अभिनय के साथ**) कल्पना कर रही हूँ, रति और यशोधरा (**मुस्कराती है**) यशोधरा रति···और···

यशोधरा—(**चौंककर**) रति और···(**शंकित होती हुई**) रति और···

प्रियम्वदा—(**बीच में ही**) रति का सौन्दर्य मिला है यशोधरा को।

यशोधरा—(**हँसती हुई**) चलहट, कोसने आई है मेरे रूप को।

प्रियम्वदा—यशोधरा !

यशोधरा—प्रियम्वदा !

प्रियम्वदा—यशोधरा की रूप-सज्जा को देखकर युवराज स्वयं को भूल जायँगे !

यशोधरा—(**सामान्य हास्य मुखरित करती हुई**) ओह ! इस सज्जा का श्रेय लेना चाहती है। समझी !

प्रियम्वदा—नित्य नवीन रूप-सज्जा ने ही तो मोह लिया है युवराज को !

यशोधरा—(**हँसती हुई**) प्रियम्वदा को कितना ध्यान है मेरा।

प्रियम्वदा—(**कटाक्षपूर्वक**) च्—च् ! यशोधरा का ध्यान ! (**शिर एवं हाथ हिलाती हुई**) न्—न् भला तुम्हारा ध्यान क्यों होने लगा मुझे ?

यशोधरा—(**सव्यंग**) तब किसका ध्यान है ? आर्यपुत्र का ?

प्रियम्वदा—निःसंदेह ! (**कनखियों से झाँककर**) कपिलवस्तु के युवराज क्या कम हैं मदन से ? मदन रति में ही उलझा रहे, यही मंगल कामना करती रहती हूँ।

यशोधरा—(**हँसती हुई**) ···और आर्यपुत्र कहीं भटक गये तब ?

प्रियम्वदा—सौन्दर्य-प्रतियोगिता में जयजयकार पाने के पश्चात् भी क्या यशोधरा को अपने सौन्दर्य के प्रति आशंका है ? तुम्हारा सौन्दर्य-प्रसाधन कम आकर्षक नहीं है ?

यशोधरा—किन्तु यह सब आर्यपुत्र को भाये तब न !

प्रियम्वदा—युवराज को आकर्षित किये रहना आवश्यक है। युवराज का स्नेह कपिलवस्तु के जन-जन में समाया हुआ है।

यशोधरा—सुन चुकी हूँ, प्रियम्वदा ! हाँ, उस दिन तुम स्वयंवर की चर्चा करते-करते चली गई थीं। अभी तो देर है आर्यपुत्र के आने में। तबतक, उस अधूरी चर्चा को ही पूरा करो न प्रियम्वदा !

प्रियम्वदा—क्या उसे सुनकर तुम्हें आनन्द आता है ? सचमुच बड़ा ही रोचक प्रसंग है।

यशोधरा—हाँ, सुनाओ न !

प्रियम्वदा—(**मुँह बनाकर:साभिनय**) सौन्दर्य-प्रतियोगिता में राजकुमारी यशोधरा जब सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित कर दी गईं, तब···तब···

यशोधरा—(**उत्कण्ठा प्रदर्शन करती हुई**) तब क्या हुआ प्रियम्वदा ?

प्रियम्वदा—······तब उपस्थित राजपुत्रों में एक दूसरे की उपस्थिति ईर्ष्या का विषय बन गई ?

यशोधरा—(**हँसती हुई**) क्यों ?

प्रियम्वदा—तुम्हें पाने के लिये ! नागदत्त कहने लगा, 'सौन्दर्य की रानी को वह प्राप्त करेगा।' उसे अपने अश्व पर विश्वास था। अर्जुनवर्मा अपने धनुष पर (**खड़ी होकर अभिनयपूर्वक**) टंकार देने लगा। रुद्रदत्त अपना खड्ग (**अभिनयपूर्वक**) सँभालने लगा।

दोनों हँस उठती हैं।

यशोधरा—फिर क्या हुआ प्रियम्वदा ?

प्रियम्वदा—महाराज श्री दण्डपाणि ने घोषणा की—(**साभिनय**) 'अब राजपुत्र अपनी वीरता का परिचय दें !'···और सब अपने-अपने साधनों के साथ तैयार हो गये। (**मुँह बनाकर**) किन्तु कपिलवस्तु के युवराज चिन्तन में जैसे खो गये थे।

यशोधरा—प्रियम्वदा उन क्षणों में तो मेरे मानस में भी उथल-पुथल हो उठी थी।

प्रियम्वदा—मुझ से राजकुमारी की मनोदशा छिपी नहीं रह सकी थी, जानती हो, उस समय मैंने क्या किया ?

यशोधरा—नहीं तो प्रियम्वदा !

प्रियम्वदा—मैंने एक स्तम्भ की ओट में खड़े होकर एक पुष्प फेंका ?

यशोधरा—क्या आर्यपुत्र की ओर ?

प्रियम्वदा—हाँ (**मुस्कराती हुई**) युवराज का ध्यान भंग हुआ, उन्होंने उस पुष्प को उठा लिया और अपने मुख पर उस फूल को फिराने लगे !

यशोधरा—फिर··· (**हँसती है**) फिर क्या हुआ ?

प्रियम्वदा—फिर वे इधर-उधर देखने लगे। जब उन्होंने मेरी ओर देखा तो मैंने संकेत किया राजकुमार प्रतियोगिता में भाग लो।

यशोधरा—(**हँसती हुई**)···और आर्यपुत्र, भाग लेने उठ खड़े हुए।

प्रियम्वदा—फिर···खड्ग–संचालन हुआ, शर-संधान हुआ और··· और अश्व-धावन, सब में ही युवराज अग्रणी रहे।

यशोधरा—कन्थक बड़े जीवट का पशु है, अश्वों में द्रुतगामी !

प्रियम्वदा—किन्तु दौड़ते-दौड़ते जब कन्थक को पसीने से भीगा और लम्बी-लम्बी श्वासें भरते देखा तो युवराज सिहर उठे।

यशोधरा—कन्थक के प्रति आर्यपुत्र की विशेष ममता है।

प्रियम्वदा—···और जब महाराज दण्डपाणि ने घोषित किया, 'कपिलवस्तु के युवराज विजेता हैं।'···तो उपस्थित समुदाय जयजयकार कर उठा।

यशोधरा—···और हमने वरमाला विजेता की ग्रीवा में···

प्रियम्वदा की ग्रीवा में अपनी भुजाएँ डालती हुई

दोनों—(**एक साथ**) डालदीं !

दोनों हँसती हैं।

यशोधरा—(**साधारण स्थिति में आकर**) सचमुच उस प्रतियोगिता में विजय प्राप्त कर आर्यपुत्र ने हमें गौरवान्वित किया है !

प्रियम्वदा—इस कृत्य से दोनों कुलों को गौरव मिला है।

यशोधरा—राजपुत्रों का भ्रम दूर हो गया।

प्रियम्वदा—निःसंदेह, भ्रम दूर हो गया। उन्हें भ्रम था कि कपिलवस्तु का युवराज जब छोटे-छोटे जीवों के प्रति करुणा से पीड़ित हो उठता है तो वह प्रतियोगिता में कैसे विजयी होगा।

यशोधरा—(**गर्व अनुभव करती हुई**) मेरा सौभाग्य प्रबल था।

प्रियम्वदा—साथ ही, (**संकेत कर**) राजपुत्रों की उस प्रतियोगिता में यह (**संकेत**) सौन्दर्य भी युवराज के लिये प्रेरक रहा। इसी सौन्दर्य ने युवराज के जीवन में उत्कण्ठा भर दी थी।

यशोधरा—(**आँखें बन्द करती हुई**) मेरा जीवन पुण्य-सलिला हो गया है। दासी के प्रति आर्यपुत्र की आसक्ति बनी रहे, यही कामना करती हूँ!

प्रियम्वदा—नारी का प्रसाधन, उसकी सज्जा, उसके शील को बढ़ावा देते हैं।

सहसा नेपथ्य में शंख-ध्वनि होती है, उसे सुनकर

लो, यशोधरा! आर्यपुत्र पधार रहे हैं। मैं चलती हूँ।

यशोधरा के उठते ही प्रियम्वदा भी उठती है। यशोधरा आगे बढ़ती है, प्रियम्वदा एक ओर चली जाती है, युवराज मन्द मुस्कान बिखेरते हुए प्रवेश करते हैं।

यशोधरा—(**सविनय**) पधारिये आर्यपुत्र, दासी प्रतीक्षा में थी!

सिद्धार्थ—(**समीप आते-आते**) देवि को प्रतीक्षा करनी पड़ी! तब तो हमने उन्हें पीड़ा पहुँचाई!

यशोधरा—(**साधारण रूप में विस्मय का भाव प्रदर्शन कर**) आर्यपुत्र! उस क्षण के पश्चात् यह क्षण अधिक

आनन्ददायक लग रहा है। (**संकेत कर**) बिराजिये !

झूले के समीप आकर दोनों साथ ही बैठते हैं।

सिद्धार्थ—यशोधरे ! तुम्हें पाकर हमारा मन आनन्दित रहने लगा है।

यशोधरा मुस्कराती है तथा विनय का भाव लाती है।

···हमारी शून्यता में जैसे गति आ गई है। स्वयम्वर के पश्चात् अब हम अपने में अद्भुत परिवर्तन पा रहे हैं यशोधरे !

यशोधरा—(**सविनय**) सचमुच, आर्यपुत्र ! स्वयम्वर की घटना बड़ी रोचक रही। अनेक योद्धाओं को परास्त-कर आर्यपुत्र ने दासी को उपकृत किया है।

सिद्धार्थ—सच प्रिये !

दोनों मुस्कराते हैं।

यशोधरा—(**सिद्धार्थ के स्कंध का सहारा लेती हुई**) स्वयंवर में जब प्रतिस्पर्द्धा के लिये राजपुत्रों को आह्वान किया गया तो मैं सशंकित हो उठी थी।

सिद्धार्थ—क्या देवी को हमारे पराक्रम पर शंका थी ?

यशोधरा—शंका ही नहीं, भय भी था, कहीं आर्यपुत्र प्रतिस्पर्द्धा से विमुख न हो जायँ !

सिद्धार्थ—क्यों ? प्रतिस्पर्द्धा से विमुख !

यशोधरा—इसलिये कि आर्यपुत्र का हृदय करुणा से ओत-प्रोत रहता है···किन्तु हृदय की प्रत्येक धड़कन आश्वस्त कर जाती थी···

सिद्धार्थ—(**मुस्कराते हुए**) हृदय की धड़कन क्या कह जाती थी, प्रिये ?

यशोधरा—(**शील का प्रदर्शन करते हुए**)···यही कपिलवस्तु के युवराज यशोधरा की थाती हैं।

सिद्धार्थ—और देवि की कामना सिद्धि में बदल गई, क्यों ?

यशोधरा—आर्यपुत्र, मन में अटूट विश्वास था। जब आर्यपुत्र को विजयी घोषित किया गया तो मेरा मन-मयूर नर्त्तन कर उठा था।

सिद्धार्थ—प्रिये, (**संकेत**) इस सौन्दर्य-राशि ने हमारा मन हर लिया है। निराशा से डूबे हृदय में आनन्द की लहरें तरंगित हो उठी हैं, तुम्हारी गति से हमारी मूकता को वाणी मिली है, यशोधरे!

यशोधरा—जीवन में सौभाग्य लेकर आई हूँ, आर्यपुत्र!

सिद्धार्थ—हर घड़ी यही कामना रहती है प्रति पल देवि के समीप ही बैठा रहा हूँ।

यशोधरा—(**भावावेश में भरती हुई**) यह तो मेरे हृदय की माँग है स्वामी! आर्यपुत्र की समीपता से तरंगित हो-हो उठती हूँ।

सिद्धार्थ—...और हमारे मन में एक नवीन भाव उठा करता है।

यशोधरा—(**शंकितसी**)...नवीन भाव?

सिद्धार्थ—हाँ, सोचता रहता हूँ, यशोधरा क्या है?

उठ खड़े होते हैं।

यशोधरा—(**विस्मयपूर्वक**) मैं...मैं स्वामी की दासी, आर्यपुत्र की सेविका!

सिद्धार्थ—तुम एक रहस्य हो! तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारी मधुर-वाणी, तुम्हारा मन्द-हास्य, देख-सुनकर मन में एक ज्योति जगमगाने लगती है। यशोधरे!
मेरा जीवन प्रणयी बन गया है।

यशोधरा—(**भावावेश**) आर्यश्रेष्ठ, मेरे देवता! परम सौभाग्य...
मेरा नारी-जीवन धन्य हो गया है। मानव-जीवन में गृहस्थ-सुख परम सुख है। (**भावावेश**) मैंने स्वर्ग पालिया है आर्यपुत्र!

सिद्धार्थ—हम भी भागीदार हैं इस स्वर्गिक सुख में!

यशोधरा—पुरुष और नारी एक दूसरे के पूरक हैं स्वामी ! समाज में ऐसे युगल जीवन के प्रेरक स्रोत होते हैं ।

सिद्धार्थ—एक नवीन सत्य मिल रहा है, यशोधरे ! इस संसर्ग से हमारी वेदना दूर होती जा रही है । हमारी करुणा में देवि यशोधरा का प्रेम पल्लवित होने लगा है ।

पुनः बैठ जाते हैं ।

यशोधरा— **(भावावेश में)** सचमुच सुखद नक्षत्रों में जन्म लिया है मैंने ।

सिद्धार्थ—पितृश्री की कामना सफल हो गई है यशोधरा ! वे हमें गृहस्थ-धर्म पालन करने के लिये आतुर थे । जब तक यशोधरा हमारे जीवन में नहीं आई थीं, मन व्यथा से भरा रहता था, किन्तु अब उसका स्थान हर्ष और आनन्द ने ले लिया है ।

यशोधरा—हर्ष और आनन्द मानव-जीवन के मूल मंत्र हैं, आर्य !

सिद्धार्थ—प्रिये, अब हमारा मानस-सिन्धु विश्वास की हिलोरों से भरा रहता है । इस नवीन जीवन के प्रति अनुराग, विश्वास और आस्था दृढ़ हो गये हैं ।

यशोधरा—दाम्पत्य-जीवन के प्रति आस्था और निष्ठा समृद्धि के सूचक हैं, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—यशोधरा राज-नर्त्तकियों का जो नृत्य हमें अप्रिय रहा, अब वह नृत्य, उनके घुँघरुओं की सुमधुर लय और थिरकन, यशोधरा की वीणा का निनाद हमारे हृदय के तारों को झंकृत करते रहते हैं ।

यशोधरा—संगीत तुषारग्रस्त जीवन में भी नव-स्फूर्ति एवं नव-जागरण भर देता है, आर्यश्रेष्ठ ।

सिद्धार्थ—निःसन्देह, यशोधरे ! राज-गायिकाओं की स्वर-साधना में हमें कल्याण के अंकुर दिखाई देने लगे हैं । उस सत्य-भावना में मानवी-यशोधरा की, उसकी मूर्ति की कल्पना हो उठती है । **(भावावेश में)** सत्य,

शिव, और सुन्दर से ओत-प्रोत—यशोधरा ! देवि का सान्निध्य मणि-काचन संयोग बन गया है ।

यशोधरा—(**विनयपूर्वक**) दासी आर्यपुत्र की सुख-समृद्धि की कामना करती है ।

सिद्धार्थ—प्रकृति का दूसरा रूप, जीवन का सत्य मिल गया है, हमें ।

सिद्धार्थ यशोधरा का हाथ अपनी अञ्जलि में लेकर स्वयं उठते हुए यशोधरा को उठाते हैं, और सामने वाली नारी प्रतिमा की ओर बढ़ते हैं ।

सिद्धार्थ—(**समीप पहुँचकर**) देवि यशोधरे ! देख रही हो, इस प्रतिमा की विशालता, प्रतिमा का गौरव !

यशोधरा—देख रही हूँ, आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—विवाह से पूर्व जब-जब हम इस प्रतिमा को देखते थे, हृदय में उद्वेलन हो-हो उठता था । एक गहन चिन्ता, एक कठोर वेदना से मन भर जाता था, किन्तु अब इस (**यशोधरा की ओर संकेत कर**) महान् नारी की समीपता से नारी का महत्त्व समझ में आ गया है । (**भावावेश**) नारी का सम्पर्क ! यशोधरा की देह का स्पर्श और इस प्रतिमा का स्पर्श (**स्पर्श करते हुए**) दोनों में एक रूपता अनुभव करता हूँ । इसकी विशालता में देवि यशोधरा के हृदय की विशालता मिलती है ।

यशोधरा—किसका भाग्य कहूँ इस (**संकेत करके**) महान् प्रतिमा का या अपना ?

सिद्धार्थ—प्रतिमा को ही देवि यशोधरा का सौभाग्य मिला है ।

यशोधरा—मधुरिमा विजयी हुई है देव ।

सिद्धार्थ—अब इस सिद्धार्थ को वही प्रिय है जो देवि यशोधरा को इष्ट है । देवि का सुख सिद्धार्थ का सुख है, यशोधरा की पीड़ा सिद्धार्थ की

यशोधरा—(**सिद्धार्थ के अधरों पर अपनी अञ्जलि रखती हुई**) देव, अनिष्ट की कल्पना, आर्यपुत्र सदैव स्वस्थ रहें।

सिद्धार्थ—(**भावावेश**) हमारे जीवन में मधु-मास आया है देवि !

यशोधरा—(**भावावेश**) जीवन तप कर ही निखरता है, प्रभो ! (**गहन भावावेश**) कालान्तर में सुखद वर्षा का आगमन होगा, प्रकृति प्रजनन शक्ति ग्रहण करेगी !

सिद्धार्थ—(**साधारण रूप से चौंककर**) यशोधरा !

यशोधरा—धरती महान् दाता है आर्य्य ! अपने भीतर छिपे बीजों को वर्षा में अंकुरित करती है, अपने लिये कुछ नहीं रखती। अंकुरों में पल्लव निकलेंगे, पुष्प और फल मिलेंगे। आर्य्यश्रेष्ठ मेरा जीवन सार्थक होगा ! **सहज आनन्दातिरेक में दोनों एक नई भावना में बह जाते हैं।**

सिद्धार्थ—(**सोचते हुए**) प्रकृति-जीवन और मानव-जीवन···

यशोधरा—प्रकृति-जीवन और मानव-जीवन में भेद कहाँ है ?

सिद्धार्थ—कपिलवस्तु का युवराज यशोधरा को विवाह-सूत्र में बाँध कर लाया है···तो वह देवि के निरन्तर विकास और समृद्धि के प्रति जागरूक रहेगा।

यशोधरा—अहोभाग्य, कितना पावन है गृहस्थाश्रम।

सिद्धार्थ—निःसन्देह पुनीत कर्म है, किन्तु एक बार हम··· **रुक जाते हैं।**

यशोधरा—(**शंकित होते हुए**)···किन्तु एक बार आर्यपुत्र ! स्वामी रुक क्यों गये ?

सिद्धार्थ—शंकित न हों देवि ! जब हमारा बाल्यकाल था, जब तक हम किशोर रहे, हमारी सहचरी प्रकृति बनी रही—माधवी लता, आम्र और जामुन के वृक्ष ! (**भावावेश**) उन वृक्षों के नीचे बैठ कर देवि हम अनेक कल्पना और भ्रान्तियों में डूब जाया

करते थे । निरन्तर चिन्तन हमारी आत्मा को व्यथा से भर दिया करता था । वहाँ बैठाकर हम करुणा और व्यथा के सागर में डूब जाया करते थे ।

यशोधरा—भूल जाओ आर्यपुत्र, वह जीवन भूल जाओ ! **(चौंकती हुई)** उसकी स्मृति···

सिद्धार्थ—उस जीवन को सचमुच भूल गये हैं, । अब,···अब··· तुम में—केवल यशोधरा के जीवन में रमा रहना चाहता हूँ

यशोधरा—आर्यपुत्र की कामनाओं में सहयोगिनी बनकर रहूँगी ।

सिद्धार्थ—तब चलो विश्राम करें, देवि थक गई होंगी !

यशोधरा—आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—कहो देवि ?

यशोधरा—आर्यपुत्र ने नगर भ्रमण की योजना बनाई है । क्या दासी को भी सुयोग मिल सकेगा ?

सिद्धार्थ—देवि, इस बार हमारे साथ राजकुमार नन्द होंगे ! दूसरी बार···हम और तुम चलेंगे ।

यशोधरा—सम्भवत: आर्य देवदत्त भी साथ होंगे !

सिद्धार्थ—**(हँसते हुए)** राजकुमार देवदत्त **(गम्भीरतापूर्वक)** राजकुमार देवदत्त को हमारा साहचर्य प्रिय नहीं । देवि ! राजकुमार देवदत्त··· **(विचार-मग्न)**····

यशोधरा—सुना है आर्य देवदत्त दासी के सौभाग्य के प्रति ईर्ष्यालु रहते हैं !

सिद्धार्थ—देवि शंकित न हों !

यशोधरा—**(धीमी ध्वनि)** आर्यपुत्र की यह यात्रा मंगलमयी हो !

सिद्धार्थ—यशोधरे ! चलो, रात्रि बढ़ रही है ।

दोनों शैया की ओर बढ़ते हैं ।

●

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : दो

गोधूलि के पश्चात् :

कपिलवस्तु : राज-प्रासाद का प्रमदा-कक्ष :

[कक्ष कला-प्रसाधनों से सज्जित दिखाई देता है। कक्ष की दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए हैं। आधार-स्तम्भों पर कुछ प्रतिमाएँ रखी हुई हैं। शाक्येन्द्र शुद्धोदन पर्यंकासन पर अधलेटी अवस्था में तथा राजमहिषी प्रजावती उनके समीप एक आसन्दी पर बैठी हैं। एक परिचारिका शाक्येन्द्र के समीप तथा एक राजमहिषी के पास खड़ी हुई मयूर-पंख डुला रही है। दम्पति किसी की प्रतीक्षा में हैं।]

प्रजावती—आर्यपुत्र ! युवराज को अबतक आजाना चाहिये !

शुद्धोदन—पहली बार गये हैं युवराज। नगर-भ्रमण में कुछ समय अधिक भी लग सकता है।

प्रजावती—नागरिक युवराज के स्वागत के लिये बहुत समय से उत्सुक थे।

शुद्धोदन—युवराज के हृदय में नागरिकों के प्रति उत्साह जाग उठे, तो शुभ हो ! संथागार की इच्छा है, सिद्धार्थ राजकार्यों में भी कुछ योग देने लगें।

प्रजावती—इससे तो युवराज का जीवन व्यस्त हो जायगा आर्य्यपुत्र। अभी इस ओर युवराज का ध्यान न जाना ही शुभ है। यशोधरा के प्रति ही युवराज अधिक जागरूक रहें, तो उचित है।

शुद्धोदन—नारी-हृदय ! (**हँसते हुए**) देवि, सिद्धार्थ का मन····

प्रजावती—देव, यशोधरा का सहयोग सराहनीय है। उसने युवराज को अपनी ओर आकर्षित कर रखा है। दोनों दाम्पत्य-सुख के प्रति आकर्षित रहने लगे हैं।

राजकुमार नन्द का गम्भीर मुद्रा में प्रवेश।

शुद्धोदन—क्या सिद्धार्थ आ गये ? नन्द, युवराज कहाँ हैं ?

नन्द—अपने प्रासाद चले गये हैं !

प्रजावती—क्या सिद्धार्थ यहाँ नहीं आयेंगे ?

नन्द एक रजत पीठिका पर बैठते हैं।

नन्द—अवश्य पधारेंगे मातेश्वरी।

प्रजावती—आर्य्यपुत्र, (**प्रसन्नतापूर्वक**) युवराज यशोधरा के पास होकर यहाँ आयेंगे।

शुद्धोदन—(**सानन्द**) दोनों का प्रेम प्रगाढ़ हो ?

प्रजावती—प्रभु हमारी कामनाओं को शीघ्र पूरा करेंगे।

शुद्धोदन—(**नन्द में खिन्नता जागती है उसे देखकर**) नन्द, खिन्न दिखाई देते हो !

नन्द—पिताजी ?

प्रजावती—नन्द। (**शंका-ग्रस्त होकर**) नन्द क्या बात है ?

सहसा सिद्धार्थ का प्रवेश।

शुद्धोदन—आओ सिद्धार्थ !

नन्द सिद्धार्थ को सम्मान देने उठते हैं। सिद्धार्थ एक रजत-पीठिका पर शुद्धोदन के समीप बैठते हैं उनके बैठने पर नन्द बैठते हैं।

प्रजावती—(**हर्षपूर्ण मुद्रा में**) युवराज कैसी रही नगर-यात्रा ?

सिद्धार्थ—नगर सुन्दर है। सज्जा अनुपम रही पितृदेव !

शुद्धोदन—(**हर्षपूर्ण मुद्रा में**) अनुभव किया सिद्धार्थ, कपिलवस्तु के नर-नारी कितने प्रसन्न हैं !

प्रजावती—उनमें युवराज के प्रति सम्मान कम नहीं है !

सिद्धार्थ—जानता हूँ मातेश्वरी। कपिलवस्तु का प्रत्येक नर-नारी, आबाल-वृद्ध ... (**चिन्तन मुद्रा**)

शुद्धोदन—(सचिन्ता) वृद्ध……!

सिद्धार्थ—(भाव बदलने की चेष्ठा करते हुए) मैंने कपिलवस्तु का जीवन देखा है पितृश्री। राजकुमार नन्द का सहयोग भी सराहनीय रहा।

प्रजावती—और छन्दक, तुम्हारा मित्र !

सिद्धार्थ—मातेश्वरी छन्दक रथ-संचालन में निपुण है। इतने विशाल जनसमूह के होते हुए भी कन्थक की टापों से कोई दुर्घटना नहीं हुई।

शुद्धोदन तथा प्रजावती मुस्कराते हैं।

शुद्धोदन—तब युवराज ने भलीप्रकार देखी नगर-शोभा !

सिद्धार्थ—(कुछ गम्भीर होते हुए) कपिलवस्तु के निकटतम जीवन को देखा है मैंने !

शुद्धोदन—(प्रसन्न मुद्रा में) युवराज अब तुम्हें राजकाज में भी रुचि लेनी चाहिये !

सिद्धार्थ—(चौंककर) पितृश्री !

शुद्धोदन—कपिलवस्तु के संथागार की इच्छा है, युवराज शासन-व्यवस्था में योग दें।

सिद्धार्थ—पितृश्री···यह कठोर कार्य है !

शुद्धोदन—कुछ गुरुतर कार्यों में रुचि लेनी चाहिये वत्स ! तुम्हें सम्राट्-पद सुशोभित करना है। प्रजा के सुख—चैन का दायित्व सँभालना है।

सिद्धार्थ - पितृश्री·· (रुककर) प्रजा का सुख !

शुद्धोदन—(साश्चर्य) सिद्धार्थ ! प्रजापालन का दायित्व···उसका सुख-चैन···

सिद्धार्थ—पितृश्री, सुख-चैन स्थिर रहने वाले नहीं हैं।

शुद्धोदन—(सचिन्ता) सिद्धार्थ कैसी बातें कहते हो ?

सचिन्ता प्रजावती तथा नन्द सिद्धार्थ की ओर देखते हैं।

सिद्धार्थ—(**गम्भीरता धारण करते हुए**) पितृदेव सुख का दूसरा छोर दुःख पकड़े हुए है !

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) सुख का दूसरा छोर दुःख पकडे हुए है ?

सिद्धार्थ—नगर की हाट-वीथियों में दुःख ही दुःख···

शुद्धोदन—(**चौंककर**) सिद्धार्थ ! कपिलवस्तु में सुख ही सुख है, दुःख का नाम भी नहीं। क्या कहते हो ?

सिद्धार्थ—पितृदेव ने दुःख को भी सुख मान लिया है। कपिलवस्तु में ऐसा वर्ग भी है जो सुख से वंचित है। सुख एक भ्रामक संज्ञा बनी हुई है उनके लिये।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ ! मालूम होता है किसी विद्वेषी ने तुम्हारे अन्तर में भ्रम भर दिया हैं।

सिद्धार्थ—विद्वेषी ! पितृश्री मुझ को किसी से द्वेष नहीं है। मैं किसी को अपने से भिन्न नहीं मानता।

शुद्धोदन—यह भावना उच्च है। महान् भावनाओं से ही मनुष्यत्व की प्राप्ति होती है।

सिद्धार्थ—पितृदेव सभी प्रकार के सूत्र मिले हैं नगर-भ्रमण में। दुःख की परिधि·········

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) पुत्र सिद्धार्थ ! नगर-भ्रमण के अवसर पर दुःख की परिधि ! वत्स !

सिद्धार्थ—मैंने···(**खिन्नतापूर्वक**) बहुत कुछ देखा है···

शुद्धोदन—रहस्य क्यों बनाये जा रहे हो ? स्पष्ट···

सिद्धार्थ—पितृश्री !

कहते-कहते रुक जाते हैं।

प्रजावती—नन्द युवराज की खिन्नता का क्या कारण है ?

नन्द—मातेश्वरी राजपथ के दोनों ओर अपार जनसमूह में आनन्द, हर्ष और उल्लास होते हुए भी···(**रुक जाता है**)

शुद्धोदन—(**उत्सुकता प्रदर्शन करते हुए**) शीघ्र कहो नन्द !

नन्द—पितृश्री, अनर्थ हो गया। युवराज को वृद्ध और रोगी का दर्शन··· !

शुद्धोदन—वृद्ध और रोगी ! सिद्धार्थ यह सब भ्रम है।

नन्द—उनकी पीड़ा और कराह से युवराज व्यथित हो उठे थे।

सभी चिन्ता में डूब जाते हैं।

शुद्धोदन—यह कैसे हुआ ? वृद्ध और···रोगी !

प्रजावती—समुचित व्यवस्था करने पर भी निमित्त-दर्शन !

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) महादेवि ! निमित्त-दर्शन, ऋषिवाणी ! (**सदर्प**) प्रजाजनों में घोषणा कर दी गई थी, युवराज के नगर-भ्रमण के समय कोई भी वृद्ध, कोई भी रोगी, एक भी संन्यासी राजपथ पर न निकले। (**सरोष**) राज-आज्ञा की अवहेलना करने का दुस्साहस किसने किया ? नन्द !

प्रजावती—क्या कपिलवस्तु का जन-मन इतना कलुषित हो गया ? युवराज की सुख-शान्ति का विरोधी बन गया !

शुद्धोदन—युवराज को वृद्ध, रोगी और मृतक के दर्शन न हों इसी हेतु हमने सात-सात प्राचीरों का निर्माण कराया। अब तक हम सिद्धार्थ को बचाये रहे। सिद्धार्थ के प्रत्येक सुख, प्रत्येक मनोरंजन के साधन जुटाते रहे, फिर भी विधान बन गया। विधि की विडम्बना !

सिद्धार्थ—पितृश्री !

प्रजावती—नन्द, तुम भी व्यवस्था न कर सके ?

शुद्धोदन—कहाँ है, छन्दक ? उसके हाथ कन्थक को रोक न सके। उन के सामने से रथयान को वह हटा न सका ! वह दण्डनीय है !

सिद्धार्थ—छन्दक दण्ड का भागीदार नहीं है पितृश्री ।

शुद्धोदन—तब कौन है वह व्यक्ति जिसने सिद्धार्थ को व्यथा पहुँचाई ?

नन्द—(**गम्भीरतापूर्वक**) सम्भव है, राजगृह के युवराज…

शुद्धोदन—राजगृह के युवराज अजातशत्रु ?

नन्द—…और राजकुमार देवदत्त भी ! पितृदेव हंसिनी-काण्ड के समय से ही राजकुमार देवदत्त का हृदय युवराज के प्रति प्रतिहिंसा की भावना से भरा हुआ है ।

प्रजावती—अजातशत्रु और देवदत्त ! क्या वे वहाँ उपस्थित थे ?

नन्द—प्रतिकार की भावना की सिद्धि हेतु राजकुमार देवदत्त, युवराज अजातशत्रु का योग चाहते रहे हैं ।

शुद्धोदन—(**सचिन्ता**) योग चाहते रहे हैं देवदत्त ! राजगृह के युवराज अजातशत्रु का आचरण उद्दण्डनीय बन गया है !

प्रजावती—वृद्ध का दर्शन…नन्द !

सिद्धार्थ एक वातायन के समीप पहुँच कर उस पर अपनी कुहनियाँ टिका कर, अपनी ठोड़ी अंजलि में रख कर आकाश की ओर देखने लगते हैं ।

नन्द—मैं और आर्यपुत्र भी वृद्धावस्था के कारण युवराज के सम्मुख बहुत ही कम आया करते थे ! कितना भयानक षड्यंत्र रचा गया है !

नन्द—मातेश्वरी, अनेक प्रहरियों के प्रबन्ध करने पर भी, एक संकीर्ण पथ से एक वृद्ध सामने आकर पुकारने लगा—'मैं भी युवराज के दर्शन करूँगा । मैं भी युवराज के दर्शन….

सिद्धार्थ वहीं लौट आते हैं ।

सिद्धार्थ—पितृदेव ! साक्षात् करुणामूर्ति—(**खिन्नतापूर्वक**) उसकी देह पर मांस नहीं था । एक-एक अस्थि दृष्टि-

गोचर होती थी।''''प्रतीत होता है उसे पर्याप्त भोजन—पौष्टिक आहार नहीं मिला ! पितृश्री, क्या कपिलवस्तु में सब के लिये पौष्टिक आहार उपलब्ध नहीं है ?

शुद्धोदन—(**गम्भीरतापूर्वक**) पौष्टिक आहार ! (**सचिन्ता**) कपिलवस्तु में सबके लिये पौष्टिक आहार की व्यवस्था है।

सिद्धार्थ—पौष्टिक आहार है तो फिर उसकी यह जीर्णशीर्ण अवस्था क्यों ?

शुद्धोदन—(**गम्भीरता तथा चिन्तापूर्वक**) सिद्धार्थ !

सिद्धार्थ—पितृश्री ! उसकी यह जीर्ण-शीर्ण अवस्था क्यों ?

शुद्धोदन—(**गम्भीरतापूर्वक**) समय, अवस्था और फिर''''फिर साधन का भेद तो है ही वत्स।

सिद्धार्थ—समर्थ साधन उस वृद्ध को नहीं मिलते कपिलवस्तु में। पितृश्री भी वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हैं, माता भी''''। मातेश्वरी ! **सकरुणा**) फिर भी उस वृद्ध ने आपके कपिलवस्तु के युवराज को आशीर्वाद दिया—'सौ वर्ष पर्यन्त जिये हमारा युवराज !'

शुद्धोदन—वृद्धावस्था प्राप्त नागरिकों के लिये शासन उचित व्यवस्था कर रहा है। (**गभीरतापूर्वक**) समुचित'''' व्यवस्था !

सिद्धार्थ—(**अविश्वास की सामान्य हँसी हँसकर**) पितृदेव, एक आतुर प्राणी'''रोग ने उसकी देह की कान्ति क्षीण कर दी है।

शुद्धोदन—रोगों का उपचार किया जाता है, रोग से मुक्ति दिलाने के लिये राज्य समुचित व्यवस्था करता है।

सिद्धार्थ—समुचित व्यवस्था करने पर भी प्राणी रोग से मुक्ति

न पासका। कितनी बड़ी विडम्बना है। (**सकरुणा**) पितृदेव ! कैसी भयावह विडम्बना !

शुद्धोदन—रोगी युवराज के सम्मुख कैसे आगया नन्द ?

नन्द—जब हमारा रथ कुछ आगे और बढ़ा तो एक दूसरी वीथिका से एक जीर्ण रोग-ग्रस्त व्यक्ति कराहता हुआ, रथ के समीप आ गया।

सिद्धार्थ—वेदना से वह नागरिक कराह रहा था !

नन्द—पितृश्री, मुझे लगा, वह व्यक्ति अभिनय कर रहा था। मैंने भ्रातृश्रेष्ठ को बताया भी, कष्ट उसे उतना नहीं है।

शुद्धोदन—(**गम्भीरतापूर्वक**) रोगी का अभिनय ··· कष्ट उसे उतना नहीं था, वेदना का अभिनय !

नन्द—राजकुमार देवदत्त उसी समुदाय में थे और उनके समीप एक अन्य व्यक्ति, सामान्य परिवेश में—ओजस्वी आकृति !

शुद्धोदन—ओजस्वी आकृति तब निश्चय ही षड्यंत्र था, सिद्धार्थ अभिनय था, यथार्थ नहीं !

सिद्धार्थ—यथार्थ की कल्पना तो यही है पितृदेव ! जिसे मैं ढूँढ़ता रहा हूँ, जिसे मेरी अन्तरात्मा खोजती रही है··· वह सब मिल गया है—जरा, रोग और मृत्यु !

शुद्धोदन—सिद्धार्थ ऐसा रूप नहीं है कपिलवस्तु में। भ्रम है।

सिद्धार्थ—भ्रम पर आवरण डालना निष्प्रयोजन है पितृश्री ! हो सकता है ऐसा नग्न, सत्य रूप कपिलवस्तु में न हो, किन्तु कपिलवस्तु से दूर भी एक सीमा है, और फिर उससे भी दूर, उसका अन्त नहीं है, उस सीमा में व्यथित प्राणी की कल्पना मेरी आत्मा कर रही है।

प्रजावती—पुत्र, सिद्धार्थ···।

सिद्धार्थ—(**संकेत कर**) वृद्धावस्था मेरे सामने है। सात प्राचीरों की सीमा के बन्धन में आपकी व्यवस्था ने मुझे रोक रखा है। इस कुशलता से मुझे जरा के दर्शन नहीं हो पाये। ग्रीष्म-भवन में मैं और यशोधरा, उसकी परिचारिकाएँ और सहचरियाँ हमारी अवस्था की ही नियोजित की जाती रही हैं। क्यों ? पितृश्री क्यों ?

प्रजावती—युवराज चिन्ता छोड़ो, यशोधरा प्रतीक्षा में होगी।

सिद्धार्थ—इस यौवन, इस रूप-सौन्दर्य की ऐसी विकरालता, कुरूपता मेरी कल्पना में भी नहीं थी। (**सकरुणा**) जीर्णशीर्ण कृश देह अस्थि-पंजरमात्र थी। मुख पर झुर्रियाँ, झुकी हुई कमर, उसे चलने में भी कठिनाई हो रही थी। उसका मुख श्रीविहीन था। नेत्रों की ज्योति क्षीण हो चुकी थी। मुक्ता-सी दन्तावलि दिखाई नहीं देती थी। उसकी वाणी (**सव्यथा**) काँप-काँप जाती थी।

शुद्धोदन—(**व्यथापूर्वक**)भूल जाओ सिद्धार्थ, भुला दो वह दृश्य !

सिद्धार्थ—ऐसा अद्भुत रूप, ऐसा वीभत्स रूप, ऐसी करुणामय स्थिति मैंने अब तक नहीं देखी। मैं, यशोधरा, आप और दूसरे एक दिन सब की ऐसी ही गति होने वाली है। ईश्वर की सर्वोपरि देन युवावस्था का ऐसा भयानक रूप !

प्रजावती—युवराज ! इस ऊहापोह को छोड़ना ही हितकर है।

सिद्धार्थ—राजा-रंक, धनिक-निर्धन स्त्री-पुरुष सब की समान गति हो जाती है। पितृश्री मैंने छन्दक से पूछा था, वृद्ध को कोई युवावस्था दे सकता है ? किन्तु वह कहता है ऐसा नहीं हो सकता !

शुद्धोदन—सच है उस वृद्ध को कोई शक्ति नहीं दे सकता !

सिद्धार्थ—(**एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए**) कोई किसी को कुछ नहीं दे सकता। वृद्धावस्था में कल की उपलब्धियाँ ही मिट जायँगीं। पितृश्री उस व्यक्ति ने भी

बालकपन में माता का दूध पीया था, युवावस्था में उसने भी धनुष पर टंकार दी होगी !

शुद्धोदन—नन्द, तुम भी न बचा सके ? सतर्कता व्यर्थ रही !

सिद्धार्थ—पितृश्री ! दोष न नन्द का है और छन्दक का। एक दिवस यह सब मेरे सामने आना था। मैंने रोगी को देखा है। रोग यौवन को दबा लेता है। यौवन पर भी प्रत्येक क्षण रोग के आक्रमण की सम्भावना बनी रहती है। कौन निरापद है पितृश्री ? रोग एक दिन प्रबल हो उठता है और जीवन का अन्त कर देता है। कल्पना कर रहा हूँ···

प्रजावती—युवराज ! कल्पनाओं का सहारा न लो !

सिद्धार्थ—मातेश्वरी, सोच रहा हूँ ऐसा कोई व्यक्ति नहीं जिसे रोग पीड़ा न पहुँचाए। रोगी की कितनी दयनीय स्थिति हो जाती है। मैंने शरीर का अन्त भी देखा है !

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) क्या मृतक भी देख लिया, सिद्धार्थ ?

सिद्धार्थ—नगर से दूर वह स्थल भी देख आया हूँ, जहाँ शरीर का अन्त हो जाने पर, काल की सहस्र जिह्वाएँ उसे चाट जाती हैं। उस देह को भस्म कर देती हैं।

शुद्धोदन—(**घोर व्यथा का प्रदर्शन**) छन्दक, वहाँ भी ले गया ?

सिद्धार्थ—छन्दक ने मेरा निवेदन स्वीकार किया, पितृदेव। अश्वों के सूत्र छन्दक अवश्य पकड़े हुए था किन्तु रथ का संचालन मेरे संकेतों पर ही था !

शुद्धोदन—सिद्धार्थ के आदेशों का पालन किया है, छन्दक ने !

सिद्धार्थ—स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु, माता-पिता अथवा स्नेहीजन मृतक का जीवन नहीं लौटा सकते। पितृश्री, मेरे नेत्रों ने चिता का विकराल रूप देखा है। कठोर काष्ठ देखा है। वह मृतक को ढक देता है, अग्नि की प्रज्ज्वलित लपटें शव की लीला समाप्त कर देती हैं। चिता में मनुष्य के संकल्प-विकल्प मिट जाते हैं। पुष्पों के काँटों की पीड़ा की कल्पना से भयग्रस्त प्राणी की यह स्थिति ! पितृदेव !

शुद्धोदन—(**सकरुणा**) पुत्र शान्त हो ! मेरे पुत्र…

सिद्धार्थ—वहाँ पहुँच कर तेरे-मेरे का सम्बन्ध पंचभूतों में मिल जाता है, पितृदेव मृत्यु अवश्य आती है। युवावस्था के पश्चात् (**गम्भीरतापूर्वक**) वृद्धावस्था अवश्य आयेगी, यही सत्य है। किन्तु रोग और काल, इनका कोई निश्चित समय भी नहीं। जन्म के पश्चात् मृत्यु और मृत्यु के पश्चात् जन्म, यही क्रम चल रहा है, यह क्रम दुख का मूल है। इस शृङ्खला में प्रत्येक प्राणी बँधा हुआ है।

शुद्धोदन—(**सरोष**) छन्दक का अपराध…

सिद्धार्थ—पितृदेव ! छन्दक लेशमात्र भी अपराधी नहीं है, वह मेरा मित्र है। वृद्ध, रोगी और मृतक से उसने सिद्धार्थ को बचाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया किन्तु जब वे मेरे नेत्रों के सामने आगये तो उनके विषय में मेरी जिज्ञासा शान्त करना उसका कर्त्तव्य था। छन्दक ने मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। यदि उसे दण्ड मिला तो मुझे भयानक पीड़ा होगी।

शुद्धोदन—सिद्धार्थ !

सिद्धार्थ—पितृदेव ! मुझे संन्यासी का आदेश मिला है !

शुद्धोदन—(**सचिन्ता एवं व्यथाभार से पीड़ित**) संन्यासी ने मन्त्र दिया है ?

सिद्धार्थ—हाँ, पितृश्री, संन्यासी ने मुझे सत्य के अनुसन्धान का मार्ग बताया है। कपिलवस्तु की प्राचीरों से अधिक शक्ति है उस सत्य-मार्ग में। मुझे सत्य के दर्शन करना है…सत्य के दर्शन !

सब की मुद्राएं गम्भीर हो उठती हैं। वातावरण में निस्तब्धता व्याप्त हो जाती है।

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : तीन

रात्रि का प्रथम प्रहर :

कपिलवस्तु : सिद्धार्थ के वर्षा-विहार प्रासाद का शयन-कक्ष :

कक्ष तत्कालीन सौन्दर्य-साधनों से सजा हुआ है। जहाँ-तहाँ अनुराग-प्रणय-साधनों को स्थापित किया गया है। सौन्दर्यमयी नारी की एक विशाल प्रतिमा दिखाई देती है तथा उसकी सखि प्रियम्वदा विनोद-वार्ता में संलग्न है। प्रियम्वदा की गोद में शिशु राहुल है। प्रियम्वदा अनुराग और स्नेह से शिशु को पुचकारती है। यशोधरा झूले पर जाकर बैठ जाती है। प्रियम्वदा उसके समीप पहुँचती है।

यशोधरा—**(बालक को लेती हुई)** आरे मेरे नन्हे ! **(बालक को निहारती हुई प्रसन्न मुद्रा में)** प्रियम्वदा, कितनी मोहक है नन्हे की आकृति !

प्रियम्वदा—**(सहर्ष)** युवराज की आकृति से मिलती है, इसकी आकृति ! चन्द्रमा-सी सुकुमारता है इसकी देह में।

यशोधरा—साक्षात् दया और करुणा की मूर्ति ! आर्यपुत्र को बहुत ही प्रिय है।

प्रियम्वदा—किन्तु जितना तुम्हारा सौन्दर्य युवराज को आकर्षित कर सकता है उतना यह शिशु…

यशोधरा—**(बीच में ही)** प्रियम्वदा चल हट ! जब देखो तब मेरे सौन्दर्य की चर्चा ! सौन्दर्य हुआ कि…

प्रियम्वदा—यशोधरा रानी, नारी का सौन्दर्य ही पुरुष को आकृष्ट किये रहता है।

यशोधरा—प्रियम्वदा, नगर-भ्रमण के पश्चात् आर्य खोये-खोये से रहते हैं। मैं चिन्तित हो उठती हूँ। चाहती हूँ देव की करुणा-प्रकृति, पशु-पक्षी तक ही सीमित न रह कर इस बालक के प्रति ही जागृत हो।

प्रियम्वदा—पुत्र में पिता की ममता स्वयं भर जाती है···

सहसा सिद्धार्थ का प्रवेश, प्रियम्वदा का प्रस्थान।

सिद्धार्थ—(**वातायन की ओर देखकर**) यशोधरा देवि, शीत वायु बालक के लिये अहितकर है।

सिद्धार्थ वातायन बन्द करते हैं

(**समीप आकर**) प्रकृति में शीत का अनुभव नहीं कर रहीं देवि ?

यशोधरा—इस प्रकृति को आपका पुत्र सहन कर सकता है।

सिद्धार्थ—प्रियम्वदा अकेली चली गई ?

यशोधरा—बुलाऊँ ? प्रियम्वदा ! ओ प्रियम्वदा !

प्रियम्वदा—आई, देवि ! (**आकर**) आज्ञा !

यशोधरा—(**बालक को देते हुए**) प्रियम्वदा ले, नन्हा तुझे···

प्रियम्वदा—(**बालक को लेकर**) आओ मेरे राजकुमार, यहाँ तुम्हारी उपस्थिति अच्छी नहीं। (**कनखियों से युवराज की ओर देखकर**) दाम्पत्य-सुख में···चलो, चलो···मेरे नन्हे !

सिद्धार्थ तथा यशोधरा मुस्कराते हैं।

यशोधरा—बालक को पाकर भी आर्य खिन्न बने रहते हैं। बालक तो पुरुष की अपनी आत्मा है····आत्मा का प्रतिबिम्ब !

सिद्धार्थ—पुत्र के प्रति आसक्ति हमारी आत्मा के विकास में बाधक न बन जाय कहीं, इसीलिये हम उसे अपने से दूर रखना चाहते हैं।

यशोधरा—(**सचिन्ता**) आर्यपुत्र !

सिद्धार्थ—देवि, हमारे अन्तर में रात्रि और दिवस मंथन चलता रहता है।

यशोधरा—नगर-भ्रमण के पश्चात् आर्यपुत्र····

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) जीवन में पतझड़····

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) अ···यौ····व····न ! यशोधरे कुछ स्पष्ट करो !

यशोधरा—(**सचिन्ता**) देव की कल्पना भयानक है !

सिद्धार्थ—यह यौवन अयौवन बन जायगा एक दिन ! (**संकेत**) वह लता-मण्डप आज उल्लास में भरा हुआ है, कल वह मुरझा जायगा । वे लताएँ, निर्जीव हो जायँगी । इनका यौवन कुरूप हो जायगा । सूखे वृक्ष-पिण्ड में सरसता नहीं रहती । वृक्ष की मोहकता नष्ट हो जाती है । मनुष्य का सौन्दर्य भी नष्ट हो जाता है ! (**प्रतिमा के पास पहुँचकर**) नारी का यह मोहक रूप ! इसकी मांसल देह कुरूपता धारण कर लेगी ।···नहीं ?

यशोधरा—देव का चिन्तन कल्याणकारी नहीं है ।

सिद्धार्थ—हमारे मानस में अनेक भ्रान्तियों ने जन्म ले लिया है, मन में अनेक संकल्प-विकल्प उठते रहते हैं । (**गम्भीर चिन्तन मुद्रा में**) शिशु···मृत्यु का दूसरा छोर !

यशोधरा चीत्कार कर उठती है, प्रियम्वदा आजाती है ।

यशोधरा—कितनी भयानक कल्पना ! प्रियम्वदा मेरा शिशु !

प्रियम्वदा—देवि, सो रहा है बालक ।

सिद्धार्थ—मृत्यु ही जीवन धारण करती है । जीवन-मृत्यु, मृत्यु जीवन एक चक्र है, यशोधरा । तुम्हारे प्रेम ने हमारा मार्ग रोक दिया था ।

यशोधरा—मेरा प्रेम सशक्त है, आर्यपुत्र को उल्लास में भर देगा ।

सिद्धार्थ—(**हँसते हुए**) बन्धक बनाये रखना चाहती हो यशोधरा ? स्वतन्त्रता का श्वास नहीं लेने देना चाहतीं ? तुम्हारी सरसता से, तुम्हारी चेतन-क्रियाओं से हमारी वेदना पर, हमारी करुणा पर, मोह का कुहरा छा गया था । यशोधरा की कांचनवर्णी देह को जरा, व्याधि और मृत्यु ढके हुए है । हमारे नेत्र····हमारे नेत्र····

यशोधरा—(**प्रतिमा की ओर ऊँची दृष्टि करके**) नारी का मोहक स्वरूप, नारी का मोह-पाश, नारी का प्रणय, नारी का समर्पण आर्यपुत्र की तरंगों का, देव की भावनाओं का अभिनन्दन करता रहा है।

सिद्धार्थ—अब तक यही प्रवंचना रही है, और अब वात्सल्य भी हमारे मार्ग में अवरोध बनकर आना चाहता है। यशोधरे ! शिशु के प्रति ममता, आत्मीयता प्रदर्शन से हमें विमुख होना पड़ रहा है।

यशोधरा—(**सचिन्ता**) कर्त्तव्य से विमुख होंगे आर्य ?

सिद्धार्थ—एक लघु कर्त्तव्य से महान् कर्त्तव्य की भावना हमें पुकार उठी है। यशोधरे ! तुम समर्थ हो, शिशु के सरक्षण का भार ग्रहण कर लोगी।

यशोधरा—देव ! दासी तो स्वयं आर्यपुत्र के संरक्षण में है। नारी का जीवन पुरुष के संकेत पर इठलाता है, गति पाता है। देव ! मैं स्वयं शरण आई हूँ, और शरणागत को शरण देना क्षत्रिय-पुत्र का कर्त्तव्य है।

सिद्धार्थ—यशोधरा ! (**विचलित भाव प्रदर्शन कर**) देवि !

यशोधरा—जीवित न रह सकूँगी, देव !

सिद्धार्थ—दशरथ-पुत्र राम ने देवि सीता का परित्याग किया था!

यशोधरा—जनक-दुलारी ने अपने जीवन-धन का आश्रय खोकर क्या शान्ति पाई थी ? मर्यादा-पुरुषोत्तम राम सीता को त्याग कर क्या जीवन भर घुलते नहीं रहे थे ? आर्य ! एक दूसरे के वियोग से अयोध्या का जन-जीवन शून्य हो गया था।

सिद्धार्थ—यशोधरा, हमें सत्य की शोध करनी है।

यशोधरा—श्रीराम ने पिता की आज्ञा का पालन किया। मातृत्व के प्रति भी वे उदासीन न रहे।

सिद्धार्थ—राम को मर्यादा स्थापित करनी थी। इसीलिये राम लोक-मानस में घुलेमिले रहे। हमें जीवन और मृत्यु

के बवण्डर से दूर रहना है । रघुकुल-तिलक श्रीराम राज-धर्म को भी मर्यादित किये बिना नहीं रहे, स्वीकार है यशोधरे । किन्तु सिद्धार्थ युग-युग से चली आई पीड़ा का अनुभव कर रहा है, पीड़ा में सिद्धार्थ के विकास का मार्ग छिपा है ।

यशोधरा—आर्य ! मेरा हृदय बैठा जा रहा है, कौनसा मार्ग अपनाना चाह रहे हैं ? देव !

सिद्धार्थ—सहयोग दें देवि ! कपिलवस्तु की युवराज्ञी से सिद्धार्थ एक दान माँग रहा है ।

यशोधरा—रक्षा, देव रक्षा ! मुझ में शून्यता छाये जा रही है । आर्यपुत्र, आर्यपुत्र !

यशोधरा संज्ञाशून्य-सी हो जाती है । सिद्धार्थ उसे अपनी बाहुओं में उठाकर झूले पर लिटा देते हैं । रंग-मंच पर अंधकार छा जाता है । प्रकाश केवल सिद्धार्थ पर पड़ता है ।

सिद्धार्थ—(**व्यथा का प्रदर्शन**) यशोधरा, स्वस्थता धारण करो । ममता-मोह, स्नेह-बन्धन सब व्यर्थ हैं । सत्य की खोज में ये बाधक हैं । किन्तु···यशोधरा का जीवन··· सिद्धार्थ की अनुपस्थिति में भार बन जायगा ? जीवन-जीवन न रहेगा ? सिद्धार्थ का साहचर्य ही यशोधरा को स्वस्थ रख सकेगा ? तब क्या यशोधरा के जीवन का अन्त ?···नहीं, नहीं !···नारी पुरुष के बिना नहीं रह सकती । नारी के जीवन में पतझड़—वसन्त का इतना जल्दी प्रस्थान ! नहीं, नहीं । इसके अभाव में शिशु-बालक, उसकी किलकारी ! उसकी किलकारियों से चीत्कार गूँज उठेगा । बालक का अन्त······बालक का अन्त ! नहीं, नहीं ! यशोधरा यह नहीं होगा । तुम स्वस्थता प्राप्त करो···स्वस्थता

(**उत्तरीय हिला-हिलाकर वायु को उभारते हैं**) बालक को तुम्हारी आवश्यकता है, एक एक का जीवन है। इस एक दूसरे के संरक्षण में जीवन है। इसमें हिंसा कहाँ है?...जीवन में सरसता है। माँ का दुलार, उसका संरक्षण जीवन देगा! किन्तु तितली, मेंढ़क, सर्प...नहीं...नहीं। उस जीवन में हिंसा है, करुणा है। यह मार्ग अप्रिय है, पहला मार्ग प्रिय है। उठो, देवि उठो। (**सिद्धार्थ यशोधरा के नेत्र बारी बारी से अपनी अँगुली और अँगूठे की सहायता से खोलते हैं और देखते हैं**) यशोधरा! यशोधरा! (**चिन्ता प्रदर्शन कर**) यह क्या कर लिया सिद्धार्थ? एक नवीन पीड़ा जन्म ले रही है। हम बधिक हैं! हम बधिक हैं! (**भावों में परिवर्त्तन**) यशोधरे! किन्तु यह सब क्षणिक है, क्षणभंगुर, वर्षा की बूँदों के समान जीवन! यह शरीर नाशवान् है, यह यौवन, यह सौन्दर्य नाशवान् है। :यह कांचनवर्णी देह अस्थिपंजरमात्र है, शरीर में श्वास है तब तक यह मेरा है, यह तेरा है। यशोधरा को पाकर सिद्धार्थ...तुमने समझ लिया था, विश्व की विभूति मिल गई है तुम्हें। किन्तु इसका दूसरा रूप पाकर क्या यही सम्मान, क्या यही जागरूकता इसे दे सकोगे? नहीं...नहीं इसका अंतिम छोर भयानक है, उसे लपटों को सौंप देना होगा। नहीं,...नहीं।

यशोधरा की अचेतना का भान प्रियम्वदा को नहीं हो पाता। वह प्रमदा-कक्ष से चली जाती है। बालक रो उठता है। सिद्धार्थ उसे अञ्जलि में उठा कर पुचकारने लगते हैं। इसी बीच यशोधरा चेतना प्राप्त करने लगती है। प्रकाश दोनों पर पड़ता है।

यशोधरा—ओह, मेरा बालक रो रहा है ।···आर्य···आर्य की गोद में कितना सुन्दर लग रहा है !

सिद्धार्थ – (**प्रसन्नता का प्रदर्शन कर**) यशोधरा स्वस्थ हो गईं ? बालक व्यग्र हो रहा था ।

यशोधरा—(**मन्द हास्यपूर्वक**) ···और आर्यपुत्र ?

सिद्धार्थ—देवि व्यथा न बढ़ायें ! लो अपना शिशु !

यशोधरा—आर्य विश्राम नहीं करेंगे ? चिन्ताओं के भार से मुख की कान्ति क्षीण हो गई है ।

सिद्धार्थ—हाँ, हाँ, हम भी विश्राम करेंगे । अवश्य···अवश्य ।

सिद्धार्थ शैया पर बैठ जाते हैं ।

सो जाओ देवि ! पर देखो ! बालक भूखा होगा !

यशोधरा—आर्य को ध्यान है !

सहसा यशोधरा को नींद आ जाती है । बालक भी सो जाता है । उन पर प्रकाश पड़ रहा है ।

सिद्धार्थ—(**विस्मयपूर्वक**) पुत्र और उसकी माता ! (**बालक को देखकर**) अरे नींद में भी हँस रहा है ! अरे, अरे ! यह मुँह क्यों बिगाड़ने लगा ! (**सिद्धार्थ बालक पर हाथ फेरना चाहते हैं किन्तु रुक जाते हैं**) जाग पड़ेगा बालक । उसे सोने देना ही उचित है । यशोधरा जाग जायेगी, उसे निद्रा की आवश्यकता है । यशोधरा को सोना चाहिये ।

सहसा यशोधरा एक भयानक स्वप्न में बुदबुदाती है, सिद्धार्थ गम्भीरतापूर्वक उससे सुनते हैं ।

यशोधरा—(**स्वप्न में विह्वल होती हुई**) आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र ! रुकिये ! इस भीषणता को रोक दीजिये । एक प्रचण्ड वायु बह रही है, ठहरिये । रुकिये !

सिद्धार्थ—(**इधर-उधर देखकर**) प्रचण्ड वायु ! कहाँ है वायु ?

वायु का नाम भी नहीं ! स्वप्न में भी शान्ति नहीं मानव को ! स्वप्न में भी शान्ति नहीं !

यशोधरा—(**पुनः स्वप्निल अवस्था में**) मैं मेघों की भयानक गर्जना सुन रही हूँ। एक प्रलय ! एक प्रलय···(**रुक जाती है**)

सिद्धार्थ—प्रलय ! हाँ, ठीक है ! उसी महा-प्रलय की गति को रोकना है। उस अन्धड़ से दूर भाग रहा हूँ यशोधरे! जीवन और मृत्यु की धुरी से दूर, सत्य मार्ग पर चलना चाहता हूँ। जहाँ न प्रलय है, जहाँ न आँधी है। जहाँ न पृथ्वी डगमगाती है और जहाँ भूधर अपना स्थान नहीं छोड़ते।···यही समय ठीक है। चल सिद्धार्थ तुझे जाना है। (**जाने का उपक्रम**)···किन्तु क्या देवि को सूचना दिये बिना ही चल देगा। नहीं ! उसे जगाकर जा. बालक को दुलार देकर जा सिद्धार्थ। बालक पिता के प्रेम का अधिकारी है।···कौन पिता ? ···कौन पुत्र ? किसकी भार्या ! यह सब मायाजाल है। यह छलना है।

सहसा यशोधरा पुनः स्वप्न देखने लगती है।

यशोधरा—(**स्वप्नावस्था में**) खण्डहर! देव खण्डहर ही खण्डहर! कपिलवस्तु ढह रही है। ग्रीष्म-प्रासाद खण्डहर हो गया है, एक-एक ईंट···, यह वर्षा-विहार, यह वर्षा-विहार भी···आर्यपुत्र बचिये। वह गिरा, वह गिरा··· (**एक चीत्कार के साथ जग जाती है, सकरुणा**) आर्यपुत्र ! आर्यपुत्र ! कहाँ हो···कहाँ हो तुम ?

सिद्धार्थ—देवि स्वस्थ हों। मैं यह रहा ! यह देखो !

यशोधरा—(**यशोधरा देखती है**) आर्यपुत्र स्वस्थ हैं। यह भवन !···

सिद्धार्थ—सब ठीक है यशोधरा सब ठीक है, तुम्हें क्या हो गया है देवि ?

यशोधरा—(**सव्यथा**) देव, यह धरती हिलती हुई दिख रही है, न जाने क्यों ? लगता है, आर्य···दासी को छोड़कर जा रहे हैं।

सिद्धार्थ—यशोधरा, शान्ति धारण करो, मन से विकारों···को दूर करो। लो, सो जाओ! मैं तुम्हारे समीप ही बैठता हूँ।

यशोधरा—(**सिद्धार्थ की अञ्जलि ग्रहणकर**) आर्य को कष्ट दे रही हूँ। देह में शिथिलता भरती जा रही है, देव!

सिद्धार्थ—सोने से शान्ति मिलेगी यशोधरे। सो जाओ।

यशोधरा एक हाथ बालक पर रखकर सो जाती है सिद्धार्थ, धीरे से अपना हाथ यशोधरा की अञ्जलि से निकाल लेते हैं।

प्रकाश!···प्रकाश की किरणें छा रही हैं, कपिलवस्तु पर। चारों ओर प्रकाश! कपिलवस्तु चमक रहा है उस प्रकाश में। प्रकाशपुञ्ज! ···प्रासादों के घटा-टोप अन्धकार से निकल।···सिद्धार्थ! जीवन में प्रकाश प्राप्त कर लौटेगा, तब इन प्रासादों में भी प्रकाश भर जायगा। क्षण-क्षण विगलित होने वाले जीवन से दूर हट सिद्धार्थ! यशोधरा तेरी प्रतीक्षा करेगी। चल उठ!

सिद्धार्थ उठकर आगे बढ़ते हैं कि द्वार पर उनका उत्तरीय अटक जाता है।

उत्तरीय! मेरा मार्ग मत रोक, मैं जाऊँगा, मेरा निश्चय अटल है।

उत्तरीय सुलझता नहीं, उसे छोड़कर चले देते हैं।

यशोधरा—(**स्वप्नावस्था**) देव! यशोधरा को छोड़कर कहाँ जा रहे हैं? यह बालक···चले गये आर्यपुत्र! (**उच्च स्वर**) आर्यपुत्र!

व्यग्रावस्था में यशोधरा जाग जाती है, सिद्धार्थ को समीप न पाकर उठकर पुकारती है—

देव! देव! (**सव्यथा**) आर्यपुत्र!

सहसा प्रियम्वदा आ जाती है।

प्रियम्वदा—देवि कहाँ हैं युवराज ?

यशोधरा—(**सविलाप अस्तव्यस्त-सी होकर**) आर्यपुत्र चले गये प्रियम्वदा। यशोधरा का भाग्य····

प्रियम्वदा—देवि यशोधरा। धीरज धरें। मैं देखती हूँ।

प्रियम्वदा इधर उधर देखती है।

यशोधरा—(**रुदनपूर्वक**)बहुत दूर निकल गये होंगे ! मैं नहीं रोक सकी देव को···यह बालक नहीं भी रोक सका !

प्रियम्वदा—(**समीप आकर सव्यथा**) कहाँ गये ? युवराज···

यशोधरा—दासी से दूर क्यों हट रहे थे आर्य ? अब समझी ?

प्रियम्वदा यशोधरा को अपनी बाहुओं में घेर लेती है। यशोधरा व्यथा व्यक्त करती है—

गीत

मुझ से न भागो प्रिय, रुको तो,
सृष्टि के माया-शिविर को छिन्न करके जा रहे क्यों ?
बाल-राहुल की किलोलें, बज्र बन कर सह रहे क्यों ?
राजसी प्रासाद को तज, जा रहे क्यों ? कुछ कहो तो···

गीत की पंक्तियाँ समाप्त होते-होते नेपथ्य में मेघ-गर्जन होता है। सर्वत्र अन्धकार छा जाता है।

●

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : चार

प्रभात :

अनोमा नदी का तट :

अनोमा नदी धीमी गति से बह रही है। उसकी लहरों से संगीत कीसी ध्वनि उठ रही है। सर्वत्र बालू तथा हरियाली दिखाई देती है। पक्षियों का कलरव सुनाई देता है। सिद्धार्थ तथा छन्दक वार्तालाप कर रहे हैं। दूर पर कंथक उदास खड़ा है। सूर्य की किरणें चारों ओर फैल रहीं हैं।

सिद्धार्थ—छन्दक ! अब तुम लौट जाओ !

छन्दक—(**सव्यथा**) क्या मुँह लेकर राज-प्रासाद में जाऊँगा। महाराज श्री···

सिद्धार्थ—पितृश्री मेरी प्रकृति से परिचित हैं, तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे। छन्दक, माताजी को धैर्य तुम्हीं बँधा सकोगे ? वे मेरी साधना के लिये मंगलकामना करें···

छन्दक—(**सव्यथा**) यह मुझ से नहीं होगा युवराज !

सिद्धार्थ—छन्दक, नन्द से कहना, मैं सत्य की खोज कर शीघ्र ही कपिलवस्तु लौटूँगा।

छन्दक—(**घोर व्यथा**) देवि यशोधरा का हृदय फटा जा रहा होगा, युवराज लौट चलो !

सिद्धार्थ—छन्दक, देवि यशोधरा तुम्हारे आश्वासन से सन्तुष्ट हो जायँगी। मित्र, तुमने सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त किया है। मुझे नवीन खोज करनी है। मानव-जीवन के कल्याण का मार्ग ढूँढ़ना है। प्राणिमात्र के उद्धार का संकल्प लेकर जा रहा हूँ।

छन्दक—युवराज ! मुझे भी उद्धार क्यों नहीं करने देते ?

सिद्धार्थ—अकेला ही जाऊँगा। हाँ, अवसर आने पर तुम्हें भी अपने साथ ले लूँगा।

छन्दक—(**सव्यथा**) प्रतीक्षा की घड़ियाँ नहीं काट सकूँगा, युवराज ! वियोग की कल्पना ही भयावह लग रही है। (**घोर व्यथा**) नहीं सह सकूँगा विछोह !

सिद्धार्थ—छन्दक, भावावेश उचित नहीं है।

छन्दक—(**सव्यथा**) सचमुच मैं आज आत्म-पीड़ा अनुभव कर रहा हूँ। युवराज मेरी वेदना की कल्पना करो।

सिद्धार्थ—वेदना की मुक्ति का मार्ग ही तो खोजना है। एक दिवस इसी विछोह-वियोग को सबको भोगना होता है। जाओ, छन्दक ! तुम कपिलवस्तु लौट जाओ ! पृथ्वी का प्रत्येक प्राणी तुम्हारे इस योगदान की सराहना करेगा।

छन्दक—(**कातरतापूर्वक**) मैं अपराधी कहा जाऊँगा।

सिद्धार्थ—भ्रम है, छन्दक। यह तुम्हारा भ्रम है। तुमने सदैव मुझे जीवन के यथार्थरूप का दर्शन कराया है। सबसे पहले देह की नश्वरता का पाठ तुम्हीं ने पढ़ाया था। रोग, जरा, मृत्यु, सत्य, तुम्हीं ने तो बताये थे।

छन्दक—(**घोर व्यथा**) मेरी भूल···मेरी भूल भयंकर रूप धारण कर गई। प्रयत्न भी किया था युवराज, निमित्त सम्मुख नहीं आ पाते···किन्तु···

सिद्धार्थ—छन्दक ! जब जरा, रोग और मृत्यु मेरे सम्मुख आ गये तब क्या तुम सत्य छिपा सकते थे ! छन्दक ! यदि तुम्हारा सहयोग न मिल पाता तो यहाँ तक आ सकता था ! मित्र तुमने मेरी गति को मुक्त किया है। आभारी हूँ, छन्दक !

छन्दक—तब मुझे आगे भी साथ क्यों नहीं चलने देते ?

सिद्धार्थ—तुम्हारी यहीं तक सीमा है। तुम्हारे योगदान की यहीं तक मुझे आवश्यकता है। अब मैं स्वयं आगे

बढ़ सकूँगा। यहीं से मुझे स्व-कल्याण का छोर पकड़ना है।

छन्दक—(**रुदनपूर्वक**) नहीं, युवराज लौट चलो !

सिद्धार्थ—मित्र को भटकाना चाहते हो छन्दक ? (**गम्भीरता-पूर्वक**) प्रगति-मार्ग का पथिक पीछे मुड़कर नहीं देखता।

छन्दक—युवराज, (**घोर व्यथा**) यह जीवन युवराज के लिये ही था और अब आगे भी······

सिद्धार्थ—छन्दक ! जीवन-क्रम में वियोग की आवश्यकता है। वियोग जीवन के उत्कर्ष के लिये आवश्यक हो गया है। वियोग की पीड़ा अनुभव किये बिना ममता-स्नेह का महत्त्व नहीं जाना जा सकता। तुम्हें मुझ से कुछ समय के लिये दूर रहना होगा। माता-पिता, पत्नी-पुत्र, भाई-बान्धव सब का मोह भुला कर आया हूँ, तब क्या मित्र बाधक बनेगा ?

छन्दक—युवराज···(**रुदनपूर्वक**) युवराज !

सिद्धार्थ—छन्दक, मित्र-धर्म को भूल रहे हो। मित्र मित्र को सन्मार्ग पर बढ़ते देखकर प्रसन्न होता है। कुपथ की ओर जाने पर वह बाधक बन जाता है। मित्र अटल हिमालय-सा उसके डगमगाते पैरों को सम्बल देता है। छन्दक, ···दूर···बहुत दूर निर्मल प्रकाश की एक रेखा झलक रही है, उसी ओर मुझे जाना है।

छन्दक—मेरे युवराज !

सिद्धार्थ—छन्दक, मेरे-तेरे के सूत्र ही बाधक रहते आये हैं अब तक। मित्र जाओ, (**संकेत**) इन राज-चिन्हों को ले जाकर पितृदेव को देना।

सिद्धार्थ राजचिन्ह उतारते हैं

छन्दक—(**सव्यथा**) युवराज इतनी कठोर योजना !

सिद्धार्थ—भिक्षक का वेश, ! साधारण भिक्षुक के रूप में ही बढ़ूँगा ।

छन्दक—**(सव्यथा)** कपिलवस्तु का युवराज—भावी सम्राट् भिक्षुक का वेश धारण कर वन-खण्डों में भटकेगा ! युवराज, **(घोरव्यथा)** नहीं देख सकूँगा, यह रूप !

सिद्धार्थ—छन्दक तुम्हें सिद्धार्थ के आदेश का पालन करना होगा ।

छन्दक—**(किम्कर्त्तव्य-विमूढ़सा होकर)** कपिलवस्तु के युवराज के आदेश का पालन करना होगा !

सिद्धार्थ—हाँ, छन्दक !

छन्दक—जब कपिलवस्तु के नागरिक तथा राज-परिवार-जन अपने युवराज के इस नये रूप की कल्पना करेंगे **(सावेश)** तो क्या उनका हृदय टूट नहीं जायगा! युवराज, मैं नहीं लौटूँगा । नहीं लौटूँगा कपिलवस्तु में हाहाकार व्याप्त हो गया होगा ।

सिद्धार्थ—छन्दक ! छन्दक !

छन्दक—जब मैं लौटूँगा तो सब मेरा कलंकित मुँह देखकर अपना मुँह फेर लेगें । आबाल-वृद्ध-नारी मुझे अभिशाप देंगे ! युवराज मुझे भी ले चलो अपने साथ ।

सिद्धार्थ—छन्दक ! सिद्धार्थ का सन्देश लेकर लौटना है तुम्हें । विलम्ब मत करो मित्र ! सम्भव है राज-पुरुष मेरा पीछा कर रहे हों । मुझे शीघ्र किसी निर्जन स्थान में चला जाने दो । लो, ये कुण्डल, किरीट, वलय । **सिद्धार्थ अपने आभूषण तथा राजसी परिधान उतारते हैं ।**

छन्दक—युवराज !

छन्दक रोकर अपनी अञ्जलि फैला देता है ।

युवराज, अभय । मेरी आत्मा विद्रोह करना चाहती है ।

सिद्धार्थ—**(आभूषण अञ्जलि में डालते हुए)** संयम रखो छन्दक!

छन्दक—प्राणों का मोह नहीं है, मित्र की सेवा में अपना जीवन न्यौछावर कर दूँगा।

सिद्धार्थ—(**कृपाण निकालते हुए**) धन्यभाग! छन्दक, तुम्हें मित्र के विकास-पथ के लिये त्याग करना पड़ रहा है।

कृपाण से अपनी केशराशि काटते हैं।

छन्दक—(**व्यथा की सीमा जैसे टूट गई है**) युवराज, यह क्या कर रहे हो? छाती पर कैसे पत्थर रख लूँ?

सिद्धार्थ—यह केशराशि यशोधरा को प्रिय रही है। भिक्षुक को मोह नहीं है इन केशों से।

छन्दक—जिस हृदय में नित्य करुणा बहती रहती थी वह हृदय इतना कठोर कैसे हो गया?

सिद्धार्थ—छन्दक, जब वस्तु-धर्म को छोड़ना होता है तब यह सब सहज स्वाभाविक है। इसके बिना संकल्प में दृढ़ता नहीं आ सकती। जाओ छन्दक, अब मैं चलता हूँ।

सिद्धार्थ का प्रस्थान

छन्दक—(**रुदनपूर्वक**) युवराज, युवराज, मुझे भी ले चलो अपने साथ!

छन्दक आगे बढ़ना चाहता है कि सिद्धार्थ संकेत से रोक देते हैं। वह मंत्र-मुग्ध और कर्त्तव्य-विमूढ़-सा खड़ा रह जाता है।

●

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : पाँच

संध्या से कुछ पूर्व :

कपिलवस्तु : सिद्धार्थ के वर्षा-विहार के प्रासाद का प्रमदा-कक्ष :

कक्ष में सर्वत्र शून्यता छाई हुई है। निस्तब्ध वातारण दिखाई दे रहा है। कक्ष में प्रतिहारियों का आवागन बहुत ही कम है। भूले-भटके कोई आता भी है तो मौन। यशोधरा बालक को सुलाने का प्रयत्न कर रही है, उसके पास प्रियम्वदा तथा कुछ परिचारिकाएँ दिखाई दे रही हैं। यशोधरा तथा प्रियम्वदा के नेत्रों से आँसू झरझर पड़ते हैं।

प्रियम्वदा—(**सजल नेत्र**) धैर्य रखो यशोधरा, युवराज शीघ्र लौटेंगे।

यशोधरा—(**बिलखकर**) प्रियम्वदा !

प्रियम्वदा—(**सव्यथा**) इन दिनों युवराज बहुत ही बेचैन रहते थे।

यशोधरा—(**व्यथा प्रदर्शन करती हुई**) आर्य को संसार से विरक्ति होने लगी थी।

अन्ना के साथ प्रजावती का चिन्ता-ग्रस्त मुद्रा म प्रवेश सब साधारण रूप से उठकर सम्मान देती हैं।

प्रजावती—(**सव्यथा**) यशोधरा, कहाँ चले गये युवराज ?

यशोधरा—(**बिलखकर**) माताजी, क्या नहीं लौटा मेरा सौभाग्य ?

प्रजावती—यशोधरा धीरज रख। कोई समाचार नहीं। महाराज ने चारोंओर अश्वारोही भेज दिये हैं।

यशोधरा—(**रुदनपूर्वक**) छन्दक और आर्यपुत्र को किसी ने भी जाते हुए नहीं देखा !

प्रजावती—महाराज व्यथित हो रहे हैं, कहीं कुछ पता नहीं चलता।

यशोधरा—(**घोर व्यथा प्रकट करती हुई**) आर्य चले गये···हम सबसे ममता छोड़ दी। सत्य-सिद्धि की खोज की धुन··

प्रजावती—(**विस्मय प्रदर्शन कर**) सत्य-सिद्धि की खोज ! यशोधरा, क्या कर रही है ?

यशोधरा—(**सिसकियाँ भरती हुई**) कुमार के जन्म ने उनके मन में अनेक भ्रम भर दिये हैं, माताजी !

प्रजावती—(**सव्यथा**) कुमार के जन्म ने ?

यशोधरा—(**सव्यथा**) कुमार को देखकर उनके हृदय में करुणा भर जाती थी। आर्यपुत्र को कई बार रोते देखा था।

सहसा मन्दगति से अस्त-व्यस्त छन्दक का प्रवेश

प्रजावती—छन्दक, कहाँ थे तुम ?

यशोधरा—(**सव्यथा**) यह व्यथा कैसी ? (**रुदनपूर्वक**) छन्दक आर्यपुत्र कहाँ हैं ?

छन्दक—(**सिसकता हुआ**) देवि, क्षमा !

प्रजावती—छन्दक, जल्दी बताओ !

छन्दक—(**व्यथाभार से दबकर**) महादेवी !

अन्ना—(**सावेश**) छन्दक बताता क्यों नहीं ? कहाँ हैं युवराज ?

प्रजावती—(**प्रतिहारी से**) जा, महाराज को बुला ला।

छन्दक—(**प्रजावती के चरणों में गिरता हुआ**) महादेवी क्षमा !

द्रुतगति से परिचारिका का प्रस्थान।

प्रजावती—छन्दक, तुम्हें अभय मिला हुआ है। बताओ कहाँ हैं युवराज ?

छन्दक—(**रुदनपूर्वक**) युवराज चले गये, महादेवी !

यशोधरा—(**रुदनपूर्वक**) छन्दक, आर्य को···तुम भी लौटा न सके ?

छन्दक—(**सव्यथा**) देवि, बहुत समझाया, बहुत रोका किन्तु सब व्यर्थ रहा।

प्रजावती—(**सव्यथा**) कहाँ गये हैं युवराज !

छन्दक—(**रुदनपूर्वक**) तपस्या करने···सत्य की खोज में।

प्रजावती—(**सव्यथा**) किन्तु कहाँ, किधर ?

छन्दक—(**सव्यथा**) वन में।

यशोधरा—(**रुदनपूर्वक**) वन-खण्डों में भटकेंगे आर्यपुत्र !

प्रजावती—(**सव्यथा**) यशोधरा का सौन्दर्य, राजकुमार का मोह कोई भी नहीं रोक सका युवराज को ।

शाक्येन्द्र शुद्धोदन व्यथा में डूबे हुए आते हैं ।

आर्यपुत्र, सात-सात प्राचीरों का बन्धन, राज-प्रासाद का वैभव पुत्र को नहीं रोक सका ।

शुद्धोदन—(**छन्दक की ओर देखकर**) छन्दक, युवराज को कहाँ छोड़ आया ?

छन्दक—(**सव्यथा**) महाराज (**पैरों में गिरता है**) महाराज, मुझे भी नहीं लिया अपने साथ, अनोमा के किनारे से ही मुझे लौटा दिया । (**रोकर**) मैं क्या करूँ, महाराज !

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) छन्दक, किस ओर गये हैं, युवराज ? हम उन्हें लिवाने जायँगे !

छन्दक—(**सव्यथा**) युवराज विना सिद्धि पाये नहीं लौटेंगे । सत्य की खोज···

छन्दक युवराज के आभूषण तथा वस्त्रालंकार सम्मुख रखता है उन्हें देखकर सब की व्यथा उमड़ पड़ती है ।

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) यह क्या ? युवराज को राजसी वेशभूषा भी प्रिय नहीं रही !

प्रजावती—(**व्यथापूर्वक**) ऋषि की वाणी सच निकली । रोग, जरा, और मृतक की छाया ने युवराज का मन भटका ही दिया ।

छन्दक—(**यशोधरा के समीप होता हुआ, रुदनपूर्वक**) देवि, यह केश-राशि !

युवराज की केश-राशि देखकर यशोधरा विलख पड़ती है ।

यशोधरा—इन केशों में सुवासित गंध उठा करती थी । किन्तु···

प्रजावती—कैसा रूप बनाया है (**कातरतापूर्वक**) युवराज !

छन्दक—(**रुदनपूर्वक**) साधारण भिक्षु का रूप बना लिया है, (**रोते-रोते**) नंगे पैर, नंगे सिर !

शुद्धोदन—(**सव्यथा**) राजमुकुट का मोह छोड़ दिया ।

छन्दक—युवराज ने कहा है, देव····

शुद्धोदन—(**उत्सुकतापूर्वक**) क्या कहा था हमारे पुत्र ने ?

छन्दक—देव, युवराज ने कहा था, इस राजमुकुट को राहुल पहनेगा ।

शुद्धोदन—(**रुदनपूर्वक**) राहुल पहनेगा, स्वयं सिद्धार्थ नहीं !

छन्दक—(**व्यथित होकर**) युवराज ने यह भी कहा था, छन्दक, मैं सिद्धि प्राप्त करने के बाद कपिलवस्तु आऊँगा । युग-युग से पीड़ित मानव को सत्य का उपदेश दूँगा । मानव की पीड़ा हरूँगा। आधि-व्याधि ने मानव-मात्र को जकड़ रखा हैं, उनसे मुक्ति दिलाऊँगा ।

शुद्धोदन—नहीं, हम नहीं भटकने देंगे । हम सिद्धार्थ को ढूँढ़कर लायेंगे और फिर ···फिर प्रासाद से बाहर नहीं जाने देंगे । (**यशोधरा के प्रति**) यशोधरा धीरज रखो !

यशोधरा—(**रुदनपूर्वक**) आर्यश्रेष्ठ !

शुद्धोदन—(**व्यथित होकर**) पुत्र को अनेक सिद्धियों के पश्चात् पाया था, विलखता छोड़ गये कितना बड़ा दुर्भाग्य है ?

प्रजावती—युवराज का भोलापन न जाने कहाँ भटकाता फिरेगा !

शुद्धोदन—(**प्रस्थान करते हुए**) हम ढूँढ़कर लायेंगे ।

यशोधरा—(**सव्यथा**) धन्य हो कपिलवस्तु के वासी ! (**व्यथित होती हुई**) देव ने विश्व-कल्याण की भावना से द्रवीभूत हो, स्वजनों का हृदय-मंथ डाला ।···इस मंथन से हमें क्या मिलेगा ?

उठकर यशोधरा एक ओर जाती है और शीघ्र ही अपनी केशराशि काटकर लौट आती है ।

प्रजावती—(**यशोधरा को देखकर**) यशोधरा यह क्या किया ? भिक्षुणियों का-सा रूप ! (**व्यथापूर्वक**) यशोधरा यशोधरा····संयम रखो ।

यशोधरा—माताजी, (**करुणा प्रकट कर**) जिस रूप को आर्यपुत्र ने स्वीकार किया है मैं भी उसी की अधिकारिणी हूँ। शृंगार-सज्जा, आभूषण सब त्याज्य हैं। अब (**संकेत**) यह शैया भी मेरे लिये त्याज्य हो गई है।

प्रजावती—यशोधरा, यशोधरा, क्यों हमारी पीड़ा बढ़ा रही हो?

यशोधरा—आर्यपुत्र ने ही भूमि पर सोने की अधिकारिणी बना दिया है। आर्य वन-खण्डों में सिद्धि की खोज करेंगे तब मैं कैसे सुख-भोग सकती हूँ।

प्रियम्वदा—यशोधरा देवि! यह कर्म मंगल का प्रतीक नहीं है।

यशोधरा—नारी पुरुष के प्रशस्त मार्ग में बाधक नहीं होगी। जिस मार्ग पर आर्यपुत्र ने अपना पग बढ़ाया है अब उसमें अपने अन्तर मन से सहयोग दूँगी! मैं वेदना को अपनी सहचरी बनाऊँगी। स्वामी की सिद्धि के लिये प्रार्थना करूँगी! आर्य-संस्कृति की रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य है।

प्रजावती—हम ढूँढ़कर लायेंगे युवराज को!

यशोधरा—(**व्यथापूर्ण मन्द हास्य**) यशोधरा की व्यथा तब ही दूर होगी, जब आर्यपुत्र इस प्रासाद को आलोकित करेंगे।

नन्द का प्रवेश

नन्द—माँ, कहाँ हैं युवराज? मैं जाऊँगा उन्हें लौटाने। (**छन्दक के कंधे झकझोर कर**) छन्दक, चलो मेरे साथ, कहाँ छोड़ा है आर्य को!

छन्दक—(**सव्यथा**) राजकुमार बहुत देर हो गई, न जाने कहाँ निकल गये होंगे!

सभी व्यथा भार से कराह उठते हैं।

यवनिक

अंक : दो—दृश्य : छह

प्रभात :

वैशाली : तपस्वी अराड़कालम की तपोभूमि :

तपोभूमि में अनेक संन्यासी दृष्टिगोचर होते हैं। गुरुवर्य अराड़कालम समाधि में बैठे दिखाई देते हैं। दूसरे शिष्य यज्ञशाला के समीप एकत्रित हैं। तपोवन से थोड़ी दूर हिरण्यवती सरिता बह रही है।

भिक्षुवेश में सिद्धार्थ का प्रवेश

सिद्धार्थ—(**एक संन्यासी से**) आर्य ! गुरुश्रेष्ठ अराड़कालम का यही आश्रम है ?

संन्यासी—भिक्षुवर, ठीक स्थान पर आ पहुँचे हो।

सिद्धार्थ—मैं उन महाभाग के दर्शन की कामना लेकर उपस्थित हुआ हूँ।

संन्यासी—(**संकेत करके**) गुरुदेव समाधि में हैं।

सिद्धार्थ—(**व्यग्रतापूर्वक**) गुरुदेव समाधि में हैं।···और आप ?

संन्यासी—मैं उन का शिष्य हूँ, (**दूसरे शिष्यों की ओर संकेत कर**) ये सब मेरे गुरुभ्रात हैं।

सिद्धार्थ—आर्य, गुरुदेव समाधि में कब तक रहेंगे ?

संन्यासी—बस उठने ही वाले हैं। हम सब प्रतीक्षा में हैं।

सिद्धार्थ—अहोभाग्य, मैं गुरु की खोज में भटक रहा हूँ। सत्य का ज्ञान प्राप्त करना है।

संन्यासी—आचार्य परम सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। भिक्षु तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी। आओ मेरे साथ।

सिद्धार्थ—चलिये बन्धु !

गुरुवर्य अराड़कालम समाधि से उठते हैं। संन्यासियों का समुदाय तथा अन्य छात्रगण उनके समीप पहुँचता

है, सिद्धार्थ कुछ आगे बढ़ आते हैं। अराड़कालम की दृष्टि उन पर पहुँचती है।

सिद्धार्थ—प्रणाम ऋषिवर्य !

अराड़कालम—कल्याण हो वत्स ! नये भिक्षु प्रतीत होते हो ?

सिद्धार्थ—सत्य की खोज में निकला हूँ।

अराड़कालम—परिचय दे सकोगे ?

सिद्धार्थ—सिद्धार्थ, कपिलवस्तु-सम्राट् शाक्येन्द्र शुद्धोदन मेरे पिता हैं। मुझे राज-सत्ता में व्यथा के अंकुर दिखाई दिये, राजप्रासादों का वैभव छोड़ चुका हूँ। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र को साँसारिक बन्धन मान चुका हूँ।

सब सिद्धार्थ की ओर विस्मय पूर्वक देखते हैं।

अराड़कालम—वत्स, तुम्हारा त्याग सराहनीय है। निःसंदेह तुम्हें ज्ञान की प्राप्ति होगी।

सिद्धार्थ—उपकृत हूँ, गुरुवर्य।

अराड़कालम—तुम्हें इन्द्रिय-दमन करना होगा। षड्रस व्यञ्जनों के अभ्यस्त रहे हो !

सिद्धार्थ—प्रासाद में रहते हुए भी कुछ अभ्यास किया था, कपिलवस्तु की सीमा छोड़ते ही रसना को जीत लिया है। गुरुदेव अनुभव कर चुका हूँ, संसार में श्री-सम्पन्नों की गणना कम है, दरिद्रनारायण ही अधिक हैं। साधारण अन्न, साधारण भोजन, घास-फूँस की शैया ताप-प्रताप अधिक व्यक्तियों को मिला है।

अराड़कालम—चिन्तन में रुचि है ?

सिद्धार्थ—हाँ, गुरुदेव, साम्ययोग का ज्ञान प्राप्त किया है। विश्व-बन्धुत्व की भावना अन्तरतम में समा चुकी है।

अराड़कालम—इन्द्रियाँ भटक जाती हैं वत्स !

सिद्धार्थ—जानता हूँ, इन्द्रियों को तृप्ति नहीं होती। मन में कल्पित उपादान इन्द्रियों को आकर्षित करते रहते हैं। मैं उन पर नियंत्रण रखना जानता हूँ।

अराड़कालम—तुम्हारी भोजन-व्यवस्था भिक्षाटन पर रही है।

सिद्धार्थ—भिक्षान्न में भी रस नहीं रहा गुरुदेव! पेट की ज्वाला को शान्त करना मात्र लक्ष्य है।

अराड़कालम—वत्स, तुम सत्पात्र हो, जो कुछ मुझे प्राप्त हुआ है उसे तुम पर प्रकट करूँगा। स्थूल जगत् से सूक्ष्म जगत् में पहुँचकर ही मानव निःस्पृह होता है। युवराज-भिक्षु पर सृष्टि का रहस्य स्पष्ट करूँगा। (**संकेत**) बैठो वत्स।

सिद्धार्थ—(**बैठते हुए**) मुझे क्या करना होगा गुरुदेव?

अराड़कालम—मन वश में करना होगा। मन को शुभ-संकल्पों की दिशा में लगा देना होगा? जो कामनाएँ मन में उठें, उनका दमन वहीं कर देना होगा।

सिद्धार्थ—समझ गया गुरुदेव!

अराड़कालम—मन का स्वाधीन रूप ही इन्द्रियों पर विजयी रहा है।

सिद्धार्थ—समझ रहा हूँ गुरुदेव!

अराड़कालम—यह देह पंच तत्त्वों—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश से बनी हैं। इन पाँचों का अपना-अपना गुण भी है। मन से प्रस्फुटित पाँचों इन्द्रियाँ इसी से प्रभावित होती रही हैं।

सिद्धार्थ—इन तत्त्वों का गुण क्या है, आचार्यश्रेष्ठ?

अराड़कालम—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द। कान मधुर गीत-सम्भाषण सुनना चाहते हैं, हाथ सुकोमल, सुन्दर वस्तु को छूने का आनन्द लेना चाहते हैं, नासिका को सुवासित गन्ध प्रिय है, जिह्वा स्वादिष्ट भोजनपदार्थों का भक्षण आवश्यक समझती है, और नेत्र, सुन्दर, सुहावना तथा आकर्षक रूप देखना चाहते हैं। इनमें साम्य-समता लानी होगी। कुरूप, अरस, दुर्गन्धि, अस्पर्श और कटुता मन इनमें किसी प्रकार का भेद न समझे, सब पर समान दृष्टि हो।

सिद्धार्थ—जान रहा हूँ, आचार्यवर।

अराड़कालम—वत्स यही वे तत्त्व हैं जिनके गुणों से हम इन्द्रियों-पर निग्रह कर सकते हैं।

सिद्धार्थ—आचार्य का आशीर्वाद सार्थक होगा। मैंने मन पर नियंत्रण कर लिया है। जगत् के समस्त भोगों को त्याग चुका हूँ।

अराड़कालम—किन्तु कामना का त्याग नहीं हुआ है। कामना पर भी संयम पाना होगा !

सिद्धार्थ—तब ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा भी कामना होगी आर्यश्रेष्ठ ?

अराड़कालम—नहीं वत्स, वही तो भोगों से विरक्त कराती है। आत्मा को शुद्ध करती है।

सिद्धार्थ—आत्मा क्या है ?

अराड़कालम—समस्त विश्व में रमी हुई है। परमात्मा के विस्तार का एक सूक्ष्म कण।

सिद्धार्थ—तब परमात्मा क्या है ?

अराड़कालम—लघु और महान् का समन्वय, बिन्दु और सिन्धु का सम्बन्ध है।

सिद्धार्थ—उसकी प्राप्ति का साधन तथा स्वरूप क्या है ? आर्यश्रेष्ठ ?

अराड़कालम—स्वाध्याय, एकान्त चिन्तन और ध्यान का आश्रय। एकनिष्ठ साधना की आवश्यकता है। जो अक्षय है, जिसका आदि और अन्त नहीं है, जो निर्विकार है, जिसकी असीमता में सीमा का अंकुर तथा लय समाया हुआ है—ऐसा है परमात्मा !

सिद्धार्थ—आचार्यवर !

अराड़कालम—सन्देह दूर कर सकते हो !

सिद्धार्थ—अरूपा का ध्यान कैसा ? उसका अस्तित्त्व कैसा ? क्या वह संदिग्ध नहीं है ?

अराड़कालम—नहीं है, इस सृष्टि की सृजक कोई शक्ति है । इस विश्व-यंत्र का संचालक कुशल है । सृष्टि के प्रांगण में अहर्निश क्रियाएँ होती रहती हैं । एक निश्चित नियम का सहारा लिए हुए सृष्टि गतिमान है । इसी आभास की कल्पना पर उसका ध्यान किया जा सकता है । सृष्टि में जो कुछ होता आया है, उस प्रकृति नटी को नचाने वाले का अस्तित्व स्वीकार करना पड़ेगा ! ध्यान, धारणा और समाधियों में रम जाने पर उसका विशुद्ध अस्तित्व दिखाई देने लगता है ।

सिद्धार्थ—गुरुदेव, मैं समाधि का अभ्यास करूँगा ।

अराड़कालम—भिक्षुवर, प्रभु तुम्हारा मार्ग प्रशस्त करें । (**एक संन्यासी की ओर संकेत करके**) जाओ, इन्हें आश्रम में स्थान दो । जाओ, सिद्धार्थ, विश्राम करो, तुम्हें सत्य मिलेगा ।

एक संन्यासी के साथ सिद्धार्थ का प्रस्थान ।

यवनिका

अंक : दो—दृश्य : सात

मध्यान्ह :

राजगृह : रत्नगिरि पर्वत के समीप एक भू-खण्ड :

भू-खण्ड के चारों ओर हरियाली दिखाई दे रही है। यहाँ एक सुहावना आश्रम दिखाई देता है। दूर पर कुछ पशु चर रहे मालूम पड़ते हैं, क्योंकि रहरह कर उनके स्वर सुनाई पड़ जाते हैं। एक किशोर चरवाहा दिखाई देता है। एक ऊँचे शिलाखण्ड पर क्षीणकाय सिद्धार्थ समाधि लगाये दिखाई देते हैं। सहसा ध्यानावस्था में ही वे लुढ़क पड़ते हैं। चरवाहा उन्हें इस अवस्था में देख कर उनके समीप आता है।

चरवाहा—(**ध्यानपूर्वक देखता हुआ**) यह क्या ? (**सोचता हुआ**) मालूम होता है संन्यासी चेतना खो बैठे हैं !

सिद्धार्थ को उठाना चाहता है किन्तु रुकजाता है

मैं, मैं, इन्हें छू नहीं सकता। (**इधर-उधर देख कर**) यहाँ कोई है भी तो नहीं ! कौन होगा ऐसी कड़ी धूप में !…तपस्वी को ! पानी की आवश्यकता है।

सिद्धार्थ—(**कराहपूर्वक**) ज…अ…ल ! ज…अ…ल

चरवाहा—तपस्वी पानी माँग रहे हैं। पानी…किन्तु कौन पिलायेगा पानी…? मैं शूद्र हूँ, यह ब्राह्मण होंगे, तपस्या में लगे ब्राह्मण को यदि मैंने पानी पिला दिया, तो चेतना आने पर शाप देदेंगे।

सिद्धार्थ पुनः संज्ञाशून्य हो जाते हैं।

अरे, यह तो चेतना खो रहे हैं ! क्या करूँ भगवान् ? सूर्य का ताप प्रखर है ! (**सकरुणा**) इनकी देह जल गई है। देह पर धब्बे पड़ गये हैं।

सिद्धार्थ—(**कुछ चेतना प्राप्त करते हुए**) ज-अ-ल, जल।

सिद्धार्थ पुनः चेतना खो बैठते हैं।

चरवाहा—पानी ! पानी की रट लगाये हुए हैं। कण्ठ सूख गया होगा। देखूँ इनके कमण्डलु में पानी होगा। (**कमण्डलु को देखता हुआ**) कमण्डलु में पानी नहीं है। हाँ, उस जलाशय से लाना होगा। तपस्वी की रक्षा करनी है।

कमण्डलु उठाकर द्रुतगति से चल देता है।

सिद्धार्थ—(**चेतना प्राप्त करते है**) बड़ी तृषा…है। जल ! जल!

इसी बीच चरवाहा जल लेकर आता है दूर पर—

चरवाहा—तपस्वी के प्राणों की रक्षा का भार मुझ पर आ गया है। हे भगवन्, क्या करूँ ? कहीं…कहीं शाप तो नहीं दे देंगे। ब्राह्मण…तपस्वी !…चिन्ता नहीं जो होगा भोग लूँगा, पहले इनके प्राण तो बच जायँ।

सिद्धार्थ पुनः चेतना खोते लगते हैं वह जल के छींटे सिद्धार्थ के नेत्रों तथा मस्तक पर डालता है।

चेतना आजायगी तो मैं भाग जाऊँगा !

सिद्धार्थ—(**चेतना प्राप्त करते हुए**) जल, जल…जल पिलादो !

चरवाहा भागना चाहता है, किन्तु रुक जाता है।

चरवाहा—भाग जाऊँ ? नहीं ! पानी न पीने पर फिर चेतना खो बैठेंगे, सम्भव है मर भी जायँ…। मैं तपस्वी को पानी पिलाऊँगा…

सिद्धार्थ—ज…ल !

चरवाहा—(**कमण्डलु सिद्धार्थ के मुँह से लगाकर**) लो तपस्वी, पानी पीलो।

चरवाहा कमण्डलु को मुँह से लगा लेता है। सिद्धार्थ पानी गटगट पीजाते हैं। चरवाहा कमण्डलु रख देता है। सिद्धार्थ की दृष्टि उस पर पड़ती है।

चरवाहा—क्षमा, तपस्वी क्षमा !

सिद्धार्थ (**चेतना प्राप्त करते हुए**) तु···म···कौन हो तुम दयालु ?

चरवाहा—मैं···मैं···गाय, बकरी चराने वाला···

सिद्धार्थ—ओ, मेषपाल···तुम कितने दयालु हो !

चरवाहा—तपस्वी, मैंने (**सहमते हुए**) भयानक अपराधकिया है। देव को छू लिया है ! क्षमा !

सिद्धार्थ—मेषपाल ! तुम मनुष्य हो।

चरवाहा—...मैं तो शूद्र हूँ।

सिद्धार्थ—वत्स, भयग्रस्त होकर यह सब भ्रम है। ! मनुष्य के लिये तुम्हारी आत्मा में पीड़ा है। मेषपाल, तुमने मानव-धर्म का सूत्र पकड़ा है। आपदग्रस्त मनुष्य की सेवा की है। बालक ! मुझे थोड़ा दुग्ध दे सकोगे ? उसके पान करने पर मेरे शरीर में शक्ति आजायगी।

चरवाहा—अवश्य करुणानिधे ! अवश्य, मुझ शूद्र पर उपकार किया है तपस्वीराज ने ! मैं न ब्राह्मण हूँ, न वैश्य !

सिद्धार्थ—मेषपाल, वर्ण-भेद भ्रममूलक है।

चरवाहा—भ्रम ! (**विस्मयपूर्वक**) वर्ण-भेद भ्रम है, तपस्वीराज !

सिद्धार्थ—यह व्यवस्था घातक है। मनुष्य को मनुष्य से दूर करना है। इसी भ्रम ने मानव को मानव से दूर कर रखा है। श्रेष्ठ कर्म करने वाले मनुष्य को समाज से दूर करना, उससे भेदभाव का व्यवहार करना उचित नहीं। कोई तर्क नहीं ! मेषपाल तुम्हारी आत्मा निर्मल है। तुम्हारी आत्मा में कोमलता है। मुझमें और तुममें कोई भेद नहीं है, कोई अन्तर नहीं हैं।

चरवाहा- दूध ले आऊँ प्रभु !

द्रुतगति से प्रस्थान

सिद्धार्थ—हाँ, मेरा बल क्षीण हो गया है, तपस्या पूर्ण करने के लिये देह की रक्षा आवश्यक है।

चरवाहा—(**आकर दूध प्रदान करता हुआ**) प्रभु, हम से दूसरे ऊँचे वर्ण वाले घृणा करते हैं। प्रभु ! ब्राह्मण,

क्षत्रिय और वैश्य हमें अपने समीप नहीं बैठने देते ! हमें तिरस्कार पूर्वक देखा जाता है ।

सिद्धार्थ—बालक ! साम्यभाव से देखने पर ब्राह्मण अथवा तुम में कोई भेद नहीं है । मैं क्या हूँ ? मेरे भाल पर त्रिपुण्ड कहाँ है ? वैश्य-कर्म मैं कहाँ करता हूँ । मैं क्षत्रिय हूँ जन्म से, अब आराधना में लगा हुआ हूँ । मात्र मनुष्य हूँ ! बन्धु मैं मानव-समाज से भिन्न कहाँ हूँ !

चरवाहा—(विस्मयपूर्वक) तपस्वीराज ने दूध नहीं पिया ?

सिद्धार्थ—(**साधारण मन्द हास्य**) पीता हूँ, (**पीकर पात्र रखते हुए**) कितनी तृप्ति मिली है ।

चरवाहा—तपस्वीराज की मान्यता दूसरों से भिन्न है । मनुष्य समाज इस पर नहीं चल रहा ?

सिद्धार्थ—यह आडम्बर है, छलना है वत्स ! छूतछात की भावना ने मानव में पीड़ा भर दी है । उच्च कहे जाने वाले समाज ने छलना का ही आश्रय लिया है । समाज की स्वार्थ-भावना काम करती रहती है । अच्छे कर्म करने वाले मनुष्य से ज्ञान की प्राप्ति करनी चाहिये । सत्कर्म की ओर बढ़ना ही श्रेयस्कर है । समाज से ऊँच-नीच का भेद मिटाना होगा ।

चरवाहा—तपस्वीराज की वाणी में मधुरता है ।

सिद्धार्थ—साम्य धर्म का अनुशीलन समाज की रचना को बल देता है । उस समाज को बदलना है, वत्स ! मेषपाल तुम्हारा ऋणी हूँ तुमने मेरे प्राण बचाये हैं । मुझे फिर तपस्या में लीन होना है ।

मेषपाल पात्र उठाता है । सिद्धार्थ समाधि में बैठते हैं । मेषपाल देखता रहता है ।

०

यवनिका

अंक : तीन — दृश्य : एक

दिन का तृतीय प्रहर :
उरुबेलय ग्राम के बाहर : एकान्त रमणीक स्थान :

स्थान अत्यन्त रमणीय है। चारों ओर निस्तब्ध वातावरण छाया हुआ है। समाधिस्थल कुछ ऊँचा है। सिद्धार्थ के पास उसके शिष्य ज्ञान-चर्चा करते हुए दिखाई देते हैं।

सिद्धार्थ—बन्धुओ ! आपने मुझ पर गुरुतर भार डाल दिया है।

अश्वजित्—आर्य, हमारे गुरुपद को स्वीकार करने के लिये सब प्रकार से योग्य हैं। हम सब की सहमति है।

सिद्धार्थ—गुरुवर्य रुद्रक का आश्रम छोड़े कितना समय व्यतीत हो गया, जैसे कल-की सी बात हो ! वहाँ मैंने शास्त्र और योग की साधना की कौण्डिन्य ! उससे मेरा पथ आगे बढ़ा है। मैंने मन की अकिंचनता, विषयासक्ति की कुण्ठा, भेद-प्रवृत्ति का नाशकारी द्वन्द, भौतिक आडम्बर की उद्दण्डता तथा देशकालगत व्यापार की संकीर्णता का व्यापक दर्शन भी किया।

वप्र—गुरुवर्य, ये असम्पदाएँ तो चित्त का क्लेश ही बढ़ाती हैं।

सिद्धार्थ—निःसन्देह वप्र ! इन असम्पदाओं की सामूहिक भयंकर अग्नि में जन-जन को जलते हुए पाता हूँ। बन्धुओ, मैं समाधि के उच्चतम शिखर पर पहुँचना चाहता हूँ। मैं उसी मार्ग पर अग्रसर होऊँगा, वह मार्ग गुरुवर्य रामदत्त रुद्रक के आश्रम मे रहते सम्भव नहीं था।

महानाम—हम सब गुरु-सेवा का भार उठायेंगे।

सिद्धार्थ—तुम्हारी ओर से निश्चिन्त हूँ। भद्रक, कामना का मूल मन में ही अंकुरित होता रहता है, जब तक कामना स्थिर है

तब तक ध्यान, धारणा और समाधि न तो सफल हो सकते हैं और न पूर्णत्व को प्राप्त हो सकते हैं। बन्धुओ ! मुझे सम्यक्-बोध के लिये प्रयत्नशील होना है। मेरा आत्मोत्सर्ग मुक्तिमार्ग की खोज के लिये है। जो कुछ उपलब्ध होगा उसे तुम पर प्रकट करूँगा।

सब—अहोभाग्य।

सिद्धार्थ—बन्धुओ ! कठोर तपस्या में लीन होकर देह को जलाना होगा।

भद्रक—गुरुदेव ! इतनी कठोर साधना में लगेंगे।

सिद्धार्थ—दैहिक सुख अथवा भोग की लालसा साधना के मार्ग में बाधक होती है। देह को सहिष्णुता देने के लिये अस्वाभाविक उपायों का सहारा लेना प्रमुख रहा है। कठोर तपस्या के द्वारा इन्द्रियों का दमन करूँगा, मन को प्रत्येक वासना से मुक्त करूँगा।

वप्र—गुरुवर्य की साधना कठोर होगी !

सिद्धार्थ—तभी शान्ति मिलेगी। (गहरी श्वास छोड़कर) शास्त्रों के अध्ययन से सत्य-लोक की उपलब्धि नहीं होती।

महानाम—महाभाग, मानव जाति के साधन-समुद्र में स्वजीवन की साधना-धारा मिश्रित कर नई प्रतिष्ठा प्रतिपादित होती रही है।

सिद्धार्थ—यथेष्ट ! महानाम यथार्थ कहा तुमने ! एकनिष्ठ साधना के द्वारा, मनुष्य अपनी चेष्ठाओं से ही सफलता प्राप्त कर लेता है। मनुष्य भाग्य का निर्माण करने वाला स्वयं है। स्वभाग्य का निर्माता ही साधक है। मुक्ति प्राप्त करने के लिये भी किसी दूसरे आश्रय की आवश्यकता नहीं रहती। विषय-वासना को दूर कर, आलस्य का परित्याग कर, कठिन साधना में प्रवृत्त होना होगा। जन्म-मरण के विशाल और गहरे समुद्र को पार करने के लिये कठोर योग-साधन द्वारा मन और इन्द्रियों पर विजय पानी है।

एक प्रकाश में सिद्धार्थ कठोर समाधि में लीन दिखाई देते हैं और दूसरे प्रकाश में शिष्यगण अध्ययन, मनन में लगे हैं। रंगमंच पर अन्धकार छा जाता है। फिर प्रकाश, फिर अंधकार इसी प्रकार निरन्तर छह बार होता है। यह क्रिया छह वर्ष की सूचक है। प्रत्येक प्रकाश के पूर्व एक वर्ष, दो वर्ष के स्वर उठते हैं। अंतिम प्रकाश में सिद्धार्थ इतने क्षीण दीखते हैं, उठने की चेष्टा में गिर पड़ते हैं। शिष्य दौड़कर समीप आते हैं।]

वप्र—(**सचिन्ता**) गुरुदेव ने शरीर की क्या अवस्था कर डाली!

भद्रक—निरन्तर छह वर्ष की कठोर तपस्या से देह सूखकर काँटा हो गई है।

सिद्धार्थ—(**सचेत होकर**) किन्तु, आत्म-सन्तोष नहीं मिला भद्रक! अब तक मुक्ति-मार्ग का सूत्र नहीं मिला।

महानाम—(**अंजलि बाँधकर**) भिक्षान्न लेकर आया हूँ, ग्रहण करें।

सिद्धार्थ—मैंने अन्न का परित्याग किया है।

वप्र—(**अंजलि बाँधकर**) भोजन से शरीर में शक्ति का संचार होगा गुरुवर्य!

सिद्धार्थ—वप्र एक लौंग अथवा एक बदरीफल जल के साथ नित्य दे दिया करें। इसी के आधार पर रहकर मनोयोग साधूँगा। मैं पुनः समाधि में बैठूँगा।

वप्र—(**सचिन्ता**) गुरुदेव जीवन-ज्योति (**हाथ जोड़कर**) गुरुवर्य

सिद्धार्थ—नहीं बुझेगी वप्र! आश्वस्त हूँ। निर्णय भी अटल है।

महानाम—(**अंजलि बाँधकर**) अन्न के अभाव से शरीर क्षीण हो जायगा।

सिद्धार्थ—एक दिन यही होना है। महानाम, अन्न से आलस्य और तन्द्रा बढ़ते हैं। इन्द्रियाँ अन्न से ही आधार प्राप्त करती हैं और शक्ति प्राप्त कर वे अस्त-व्यस्त हो जाती हैं। इन्द्रियों के सशक्त हो जाने पर वे मनुष्य का संयम भंग कर देती हैं, ध्यानावस्थित होने में बाधक बन जाती हैं। बन्धुओ! समाधि में ध्यान की आवश्यकता है।

अश्वजित्—(**सचिन्ता, अञ्जलि बाँधकर**) दुःसह साधना है, शाक्यमुनि !

सिद्धार्थ—सत्य का साक्षात्कार करना है, सिद्धि प्राप्त करनी है। मैं पुनः समाधि मे बैठता हूँ।

सिद्धार्थ समाधि लगाते हैं।

महानाम—भद्रक, भीषण साधना का योग !

अश्वजित्—(**विश्वास की मुद्रा में**) सत्य की खोज में अवश्य करेंगे गुरुदेव !

छद्मवेश में अजातशत्रु तथा देवदत्त का प्रवेश

देवदत्त—(**सिद्धार्थ को गहरी दृष्टि से देखता हुआ**) भिक्षुश्रेष्ठ यह आश्रम किसका है ?

महानाम—(**गम्भीर मुद्रा में**) शाक्यमुनि ! गौतम सिद्धार्थ का !

देवदत्त—(**चौंककर, किन्तु सँभलते हुए**) कपिलवस्तु के सिद्धार्थ !

अजातशत्रु की ओर रहस्यमयी दृष्टि से देखता है।

अजातशत्रु—कठोर साधना में लीन मालूम होते हैं तुम्हारे गुरुदेव !

अश्वजित्—सिद्धि प्राप्त करेंगे गुरुदेव !

देवदत्त—(**सहास्य**) ढोंगियों का प्रपंच देखा है।

कौण्डिन्य—अभ्यागत सावधान ! गुरु-निन्दा सहन नहीं होगी।

अजातशत्रु—साधु मिथ्या आडम्बर का सहारा लिये रहते हैं।

भद्रक—सावधान ! (**एक डण्डा उठाता हुआ**) गुरु-निन्दा सुनूँ इससे पहले तुम्हारा मस्तक फोड़ दूँगा। कौन हो तुम ?

अजातशत्रु—ब्राह्मण व्यर्थ रोष करते हो ! जानते हो यह भूमि…

देवदत्त—(**बीच में रोककर**) नगर से भिक्षान्न प्राप्त करना और समाधि लगाना यही कर्म है इन साधुओं का !

अश्वजित्—तुम्हारा मन विकारों से भरा हुआ है।

देवदत्त—सिद्धार्थ ढोंग का आचरण करने में सिद्ध हस्त है। (**जाते-जाते**) मगध के अन्न पर पलने वालों का आडम्बर…

●

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : दो

रात्रि का प्रथम प्रहर :

मगध : युवराज अजातशत्रु का प्रमोद कक्ष :

कक्ष अनेक प्रकार के सज्जा-साधनों से सजा हुआ है। स्थान-स्थान पर सौन्दर्य प्रतिमाएँ आधार-स्तम्भों पर रखी हैं। युवराज अजातशत्रु के साथ देवदत्त का प्रवेश।

अजातशत्रु—मित्रवर देवदत्त, तुमने मगध में आकर मेरे जीवन में आनन्द ही आनन्द भर दिया है।

देवदत्त—मित्र, जीवन में आनन्द ही आनन्द है, यदि हमारे मार्ग में बाधा उपस्थित न हो।

अजातशत्रु—(**चौंककर**) हमारे मार्ग में बाधा ?

देवदत्त—(**वक्रदृष्टि से**) क्या युवराज सम्राट् बिम्बसार का विरोध सह सकेंगे ?

अजातशत्रु—पितृश्री का विरोध ! अभिप्राय समझा नहीं !

देवदत्त—आर्य बिम्बसार के सम्मुख…

अजातशत्रु—हमारे आनन्द मार्ग में आने वाला…

देवदत्त—…अवश्य शत्रु होगा।

अजातशत्रु—निःसन्देह।… हम पितृश्री से भी संघर्ष लेंगे।

देवदत्त—(**वक्रदृष्टिपूर्वक**) मगध का सिंहासन…मार्ग का पहाड़ ढाना होगा। सम्राट् गौतम बुद्ध के प्रति आकर्षक होते जा रहे हैं। यदि गौतम बुद्ध मगध में आ गया तो यहाँ से आनन्द-योग के साधन-सुरा और सौन्दर्य तिरोहित हो जायेंगे। (**गम्भीरतापूर्वक**) युवराज एक आँधी उठ रही है, उस झंझावात से संघर्ष लेना होगा।

अजातशत्रु—हम तत्पर हैं।

देवदत्त—मगध के सिंहासन पर आर्य बिम्बसार नहीं; अजातशत्रु होंगे।

अजातशत्रु—(**चौंककर**) पितृश्री को पदच्युत……विद्रोह ?

देवदत्त—कहा था न कठोर कर्म है । एक बार आर्य सम्राट् गौतम बुद्ध को मगध का सिंहासन देने के लिये प्रस्तुत हो गये थे, यदि गौतम बुद्ध यहाँ आगया तो आनन्द-भोग में बाधा उत्पन्न होजायगी । तब यह रस···

अजातशत्रु—(**सावेश**) हृदय पर पाषाण रखूँगा, मित्र के परामर्श का सम्मान करूँगा ।

देवदत्त—आर्य बिम्बसार को बुद्ध की ओर बढ़ने दो और युवराज···

अजातशत्रु—मगध का सिंहासन मेरा होगा ।

दोनों हँसते हैं ।

देवदत्त—(**गम्भीरतापूर्वक**) गौतम बुद्ध का आडम्बर प्रत्येक पर छाये जा रहा है । युवराज वह मेरा शत्रु है !

देवदत्त का—(**दाँत पीसकर**)···शत्रु !

अजातशत्रु—कपिलवस्तु में निमित्त-दर्शन···(**हँसते हुए**) रोगी, जरा, मृत्यु···! मगध के कलाकारों के कुशल अभिनय ने युवराज सिद्धार्थ को कपिलवस्तु छुड़ा ही दिया ।

देवदत्त—(**गम्भीरतापूर्वक**) सिद्धार्थ स्वयं यशोधरा के सौन्दर्य को ठुकरा कर आया है । वह किसी को सौन्दर्य-रस का भोग क्यों करने देगा ? उसे मगध की सीमा से हटाना ही होगा ।

अजातशत्रु—कण्टक को दूर फेंक देने से ही मार्ग प्रशस्त होगा ।

देवदत्त—(**गम्भीरतापूर्वक**) कामिनी का नयन बाण, उसका भ्रू-विलास (**हँसकर**) सिद्धार्थ की तपस्या खण्डित होगी । मेनका ने विश्वामित्र का तप खण्डित किया था और··· आम्रपाली—रम्भा सिद्धार्थ को पथभ्रष्ट करेगी । (**हँसता-हुआ**) पथ-भ्रष्ट संन्यासी ! सिद्धार्थ तिरस्कृत होगा । उसे अपमान के घूँट पीने होंगे । युवराज !

अजातशत्रु—हम पहले सिद्धार्थ को ही अपने मार्ग से हटायेंगे राजकुमार !

●

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : तीन

प्रभात के पश्चात् :

पूर्व दृश्यानुसार समाधि-स्थल :

तपस्वी सिद्धार्थ पद्मासन लगाये ध्यानमग्न बैठे हुए दिखाई देते हैं। शरीर की अस्थियाँ स्पष्ट दिखने लगी हैं। एक ओर से दो युवतियाँ आकर उनके सम्मुख खड़ी हो जाती हैं। एक युवती की गोद में बालक तथा दूसरी के हाथ में एक पात्र है, जो ढका हुआ है।

सुजाता—राधा, धन्य भाग ! वन-देवता प्रकट हुए हैं। उपकृत हुई मैं।

राधा—मैं कहती न थी स्वामिनी, वन-देवता प्रसन्न होते हैं तो दर्शन देते हैं। स्वामिनी, अर्चना-वन्दना शीघ्र करलो।

सुजाता आरती पात्र लेकर उसमें ज्योति जलाती है और तपस्वी की आरती उतारती हुई आनन्दविभोर होती है। सहसा तपस्वी सिद्धार्थ का ध्यान भंग होता है। अपने सम्मुख युवतियों को देखकर विस्मयविभोर हो जाते हैं।

सिद्धार्थ—तुम कौन हो ?

सुजाता—(**हर्ष मुद्रा में**) वन-देवता ! (**अभिवादन मुद्रा बनाती हुई**) मेरे सुकृत फल-फूलें !

सिद्धार्थ—(**विस्मपूर्वक**) कौन हो देवि ? यह क्या कर रही हो ?

सुजाता—वन-देवता ने मेरा जीवन सफल किया है।

राधा—(**शिशु को दिखलाती हुई**) स्वामिनी को पुत्र-लाभ हुआ है।

सिद्धार्थ—तुम्हारी स्वामिनी को पुत्र-लाभ हुआ है ?

सुजाता—हाँ, देवता (**प्रसन्नतापूर्वक**) वन-देवता ने प्रसाद दिया है ।

सिद्धार्थ—किन्तु इस सबसे हमें क्या प्रयोजन !

राधा—स्वामिनी ने वन-देवता की मनौती मनाई थी ।

सिद्धार्थ—आयुष्मान हो शिशु किन्तु इस आडम्बर में विश्वास···

सुजाता—आर्यवर, ऐसा न कहें । मुझे वन-देवता ने ही पुत्र-रत्न दिया है ।

राधा—(**आनन्दविभोर होती हुई**) वन-देवता का दिया हुआ बालक···

सिद्धार्थ—भ्रम ! देवि इन भ्रान्तियों में आस्था व्यर्थ है । (**रुककर**) समाज में कितनी कुरीतियाँ भरी हुई हैं ।

सुजाता पायस सिद्धार्थ के सम्मुख रखती है ।

सिद्धार्थ—(**पायस देखकर**) कितना सुवासित भोजन है ।

राधा—वन-देवता स्वीकार करें, पायस ग्रामवासियों को बाँटना है ।

सिद्धार्थ—पाखण्ड और आडम्बर से मुक्त कराना है, समाज को! (**विचार मग्न**) बिना अन्न ग्रहण किये मेरी देह क्षीण हो गई, शिथिलता भर गई है किन्तु सत्य का छोर अभी तक नहीं मिला । बिना शक्ति समाधि कैसे लगा सकूँगा । (**सुजाता के प्रति**) देवि, तुम्हारा पायस मैं स्वीकार करूँगा । मंगलमय हो तुम्हारा मार्ग !

सुजाता—(**गद्गद् होती हुई**) मेरा जीवन उपकृत हो गया है ।

सिद्धार्थ—मेरे उदर में चिरकाल से अन्न नहीं गया, ऐसे मनुष्य को भोजन देकर सचमुच तुमने कर्त्तव्य निभाया है ।

राधा—वन-देवता प्रसन्न हैं स्वामिनी !

सिद्धार्थ—देवि मैं वन-देवता नहीं एक साधारण मनुष्य हूँ ।

सिद्धार्थ सुजाता से पायस ग्रहण करते हैं दूर पर पाँचों शिष्य सिद्धार्थ और सुजाता को समीप देखकर विस्मय से वहीं एक झुरमुट की ओट में होकर देखते हैं ।

सुजाता—थोड़ा और वनदेवता **(पात्र आगे कर)** कुछ और…

सिद्धार्थ—नहीं, देवि इतना ही पर्याप्त है। इतने से ही देह में शक्ति का संचार हो जायगा। मैं तपस्या में लीन हो जाऊँगा। तुम्हारी उदारता से उपकृत हूँ, सन्नारियो! विश्व भ्रम, अन्धकार और मिथ्या धारणाओं में डूबा हुआ है। उसे मिटाने में तुम्हारा पायस मुझे बल देगा।

सुजाता—अब आज्ञा दें वन-देवता, स्वामी प्रतीक्षा कर रहे होंगे!

राधा बालक को तपस्वी के सम्मुख करती है

सिद्धार्थ—**(आशीर्वाद सूचक हाथ उठाकर)** युगयुगान्तर तक बालक के सुकृत फैलें।

सुजाता तथा राधा विनय प्रदर्शन कर चली जाती हैं। सिद्धार्थ खड़े हो जाते हैं।

वप्र, भद्रक सभी न जाने कहाँ चले गये?

सहसा सिद्धार्थ दूर पर अपने पाँचों शिष्यों को लौटते हुए देखते हैं वे उन्हें बुलाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु प्रयत्न निष्फल होता है।

(गम्भीरतापूर्वक) अब मैं सत्य का साक्षात्कार करूँगा। या तो मैं सत्य की प्राप्ति करूँगा अथवा इस देह को ही समाप्त कर दूँगा। सत्य की खोज से देह…

सिद्धार्थ ऊपर दृष्टि किये खड़े रह जाते हैं।

●

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : चार

अर्द्धरात्रि का आरम्भ :
पूर्ववत् सिद्धार्थ का समाधि-स्थल :

चारों ओर घटाटोप अन्धकार ! झंझावात ! आकाश में घटाएँ छा जाने से नक्षत्र विलीन हो जाते हैं। चपला की चपलता से धरती कम्पति-सी हो-हो उठती है। दूर पर कुछ पुरुष-ध्वनियों की फुसफुसाहट होती है। थोड़ी देर पश्चात् विद्युत्-प्रकाश में देवदत्त, अजातशत्रु तथा उनके साथ एक नर्त्तकी दिखाई देते हैं। तीनों आगे बढ़ते हैं कि उन्हें तपस्वी सिद्धार्थ दिखाई दे जाते हैं। उनकी देह पर तीव्र प्रकाश पड़ रहा है। ध्यान-मग्न समाधि-अवस्था में पद्मासन लगाये बैठे हैं। आगन्तुकों पर प्रकाश पड़ता है। अजातशत्रु रुक जाता है।

देवदत्त—(**रम्भा के साथ आगे बढ़कर**) रम्भा ! देखो तपस्वी बैठा है। उसका तप···

रम्भा—(**धीमे स्वर में**) आर्य देवदत्त, गहन अन्धकार !

देवदत्त—(**रम्भा के साथ आगे बढ़कर**) हमारी उपस्थिति में (**दोनों एक ही प्रकाश के घेरे में**) भयमत करो।

रम्भा—(**देवदत्त का आश्रय लेकर बढ़ती हुई**) आश्वस्त हूँ आर्य···किन्तु भयावने अन्धकार में कैसे पहुँचा जायगा !
आकाश में गम्भीर गर्जना होती है। विद्युत् प्रकाश फैल जाता है।

देवदत्त—मैं पहुचाऊँगा तुम्हें। रम्भा! तुम्हारा सौन्दर्य, तुम्हारी अभिनय-नर्त्तन कला का वह क्षण···(**आगे बढ़कर**) रम्भा तुम्हारे घुँघरुओं की थिरकन, कोकिलकण्ठी का मधुर स्वर, तपस्वी की तपस्या अवश्य खण्डित कर देगा।···और···और पुरस्कार !

रम्भा—(**प्रसन्नमुद्रा धीमा स्वर**) मेरा चमत्कार देखना राजकुमार ! तपस्वी का संयम···

अकेली बढ़ती है कि मेघ-गर्जन के कारण वह सहम उठती है ।

अजातशत्रु—(**दूर से ही**) कल्पना सुन्दर है किन्तु देख रहे हो तपस्वी की भव्यमूर्ति ! कैसी अटल शान्ति है। प्रकृति (**देवदत्त के समीप आकर**) की भीषणता ने जिस मानव को स्पर्श तक नहीं किया है···तो···तो ऐसा भव्यरूप···इतना ओज हमने किसी साधु-संन्यासी में नहीं पाया ! देवदत्त तपस्वी के रोम-रोम से ज्योति-किरणें फूट रही हैं ।

देवदत्त अजातशत्रु को छोड़कर आगे बढ़कर रम्भा के समीप पहुँचता है । विद्युत्-प्रकाश और मेघ-गर्जन होता है ।

रम्भा—(**धीमा स्वर**) आर्य देवदत्त ! कितना त्रासदायक है यह समय ! भय ! भय ! शंका····

देवदत्त—(**दोनों साथ बढ़कर**) तपस्वी गहन समाधि में है ।

सहसा मूसलाधार वर्षा होने लगती है । प्रकाश में देवदत्त तथा रम्भा एक वृक्ष की छाया में होजाते हैं । अजातशत्रु दिखाई नहीं देता ।

रम्भा—आर्य, प्रकृति का प्रकोप···हमारे कार्य में बाधा डाल रहा है । चलो आर्य लौट चलें !

देवदत्त—(**आदेशपूर्वक स्वर**) रम्भा नर्त्तकी ! ध्यान है कितनी द्रव्यराशि तुम्हें इस कार्य की सिद्धि के लिये दी गई है । युवराज अजातशत्रु को सन्तोष मिला तो···

रम्भा—(**धीमा-स्वर**) राजकुमार, मैं क्षुद्र नारी हूँ । द्रव्य से आपने अवश्य मुझे अपनी सेवा में ले लिया है, किन्तु इस प्रकोप को नहीं देख रहे ?

आकाश में पुनः गर्जन होता है, वर्षा धीमी हो जाती है। विद्युत्-प्रकाश में तपस्वी सिद्धार्थ की आकृति देदीप्यमान हो उठती है। दोनों सिद्धार्थ से कुछ ही दूर रह जाते हैं।

देवदत्त—(धीमी ध्वनि) रम्भा बढ़ो आगे !

रम्भा—(धीमा स्वर) बढ़ती हुई कितनी देदीप्पयान आकृति है! तपस्या में लीन ··

देवदत्त—(आदेश के स्वर में, धीमी ध्वनि) एक समय युवराज सिद्धार्थ को यशोधरा के सौन्दर्य ने अपनी ओर खींच लिया था। सिद्धार्थ का चिन्तक रूप यशोधरा के रूप में समा गया था, रम्भा !

रम्भा—(धीमी ध्वनि) आर्य देवदत्त ! देवि यशोधरा के रूप ने सिद्धार्थ को अपनी ओर···

देवदत्त—(धीमा स्वर) रूपसी, तुम्हारा अलौकिक सौन्दर्य तपस्वी सिद्धार्थ का आसन डिगाने में समर्थ है। तुम उसको अवश्य भ्रष्ट करोगी।

रम्भा शंकित होती हुई भी चपलता धारण करने की चेष्टा करती है और अकेली आगे बढ़ती है।

रम्भा—(धीमा स्वर) तपस्वी गहरी समाधि में लीन है। (बढ़ती हुई धीमी ध्वनि) देखो, तपस्वी देखो मैं, आई हूँ, तुम्हारे सम्मुख !

सहसा आकाश मे गम्भीर गर्जन होता है। गर्जन से वृक्षों के पक्षी इधर-उधर भागते हुए चीत्कार कर उठते हैं। रम्भा स्वयं भयभीत हो उठती हैं, उसके पैर थम जाते हैं। गर्जन समाप्त होने पर सहसा, नेपथ्य में कामोत्तेजक वाद्य-ध्वनियाँ उभरने लगती हैं। वर्षा रुकसी जाती है। अब एक तीव्र प्रकाश की लहर तपस्वी तथा रम्भा पर पड़ती है।

रम्भा फिर आगे बढ़ती है, तपस्वी साधारण रूप में हिलने-सा लगता है।

देवदत्त—(कुछ दूर से प्रसन्न मुद्रा में : धीमी ध्वनि में) तपस्वी और नर्त्तकी ! देखें कौन विजयी होता है ? मेरा मन···मेरा मन कह रहा है तपस्वी झुक जायगा। कितनी मादक ध्वनि है। रम्भा···रम्भा···तपस्वी का शरीर चंचल होने लगा। सुन्दर योग है····बढ़ो, बढ़ो।

रम्भा—(आगे बढ़ती हुई) वर्षा रुक गई है। तपस्वी का मोहक रूप ! मैं इसे अपने नृत्य से आकर्षित करूँ ? (रम्भा समीप होना चाहती है कि उसे सरसराहट मालूम होती है) क्या ? (चौंककर) क्या सर्प।

आकाश में तीव्र प्रकाश फैलकर धरती और सर्प पर पड़ता है। सर्प तीव्र गति में भागता है। प्रकाश में रम्भा भय-ग्रस्त होकर चीत्कार कर उठती है। वह चेतनाशून्य हो जाती है, यह देख देवदत्त शीघ्रतापूर्वक उसे अपनी बाहुओं में उठा ले जाता है, आकाश निर्मल हो जाता है। देवदत्त रम्भा को एक वृक्ष के सहारे बैठाता है। पूरा चन्द्रमा चमकने लगता है। आकाश में तारे छा जाते हैं।

देवदत्त—(मद्धिम स्वर में) रम्भा ! रम्भा ! डर गई··अथवा···तुम पराजित····

रम्भा—(धीमा स्वर) आर्य,···· राजकुमार तपस्वी····तपस्वी अडिग था, सर्प····

देवदत्त—(धीमा स्वर) रम्भा क्या तपस्वी का तेज सहन नहीं कर सकीं ?

रम्भा—(धीमा स्वर) तपस्वी और मेरे बीच सरसराहता हुआ साँप था।

देवदत्त—(विस्मयपूर्वक धीमी ध्वनि) सर्प !

रम्भा—(**धीमा स्वर**) हाँ मेरे और तपस्वी के बीच काला नाग ! (**भय स चेतना खोती हुई**) तप···स्वी औ···र मेरे बीच काला नाग···स···अ···र्प (**स्वर डूब जाते हैं।**)

देवदत्त—(**निराश होते हुए धीमा स्वर**) सर्प, तपस्वी को डस नहीं गया सम्भव है···सम्भव है··· (**उठकर देखता है।**) तपस्वी वैसा ही बैठा है। यह उपाय भी व्यर्थ गया···रम्भा भी चेतना खो बैठी।

(**नेपथ्य में मधुर संगीत-वाद्य ध्वनियाँ उभरती हैं**)

नेपथ्य—(**गम्भीर ध्वनि**) मैं मार—कामदेव हूँ सिद्धार्थ ! मैं तुम्हारा आसन हिला सकता हूँ।

सिद्धार्थ—(**ध्यानावस्था में**) सावधान मैं तुम्हारी लीला को पहचानता हूँ। कामदेव ! तुम्हारे कौतुक मैं पहचानता हूँ। (**आदेशपूर्ण स्वर**) जाओ तुम विफल मनोरथ लौट जाओ ! मैंने रति और अरति पर विजय प्राप्त कर ली है।

नेपथ्य—(**अट्टहास की ध्वनि गूँजती है** तपस्वी छोड़ दो यह मार्ग ! अत्यन्त कठोर है साधना। मानव का यह प्रयत्न दुराग्रहमात्र है।

सिद्धार्थ—(**ध्यानावस्था में**) वह अखण्ड ज्योति मुझे आह्वान कर रही है उस ओर हंस ऊँचे से ऊँचा उड़ता है, वह रोके नहीं रुकेगा···वह···वह हंस !

नेपथ्य—(**गम्भीर वाणी**) यह अहंकार है। तृष्णा अनन्त है। तृष्णा और भोग का संयोग जीवन का सृजन करता है, सिद्धार्थ !

सिद्धार्थ—(**ध्यानावस्था में**) मैं पहचानता हूँ इसे ! अहंकार को वश में किया है मैंने।

सहसा चारों ओर फिर गहन अन्धकार छा जाता है। प्रकाश केवल सिद्धार्थ पर पड़ रहा है। हृदय-

वेधक ध्वनियाँ उठती हैं। धरती में कम्पन-सा होने लगता है।

(ध्यानावस्था में) मैं अडिग हूँ, धरती चलायमान है। इसकी चंचलवृत्ति को जान चुका हूँ। रूप, यौवन, श्री, सम्पत्ति, पुरुष, नारी सब कुछ चंचल है। स्थिर कुछ भी नहीं। मैं अडिग हूँ, केवल मैं स्थिर हूँ। रूपराग से मुक्त जीवन उसके अभाव में भी स्थिर रह सकता है। रूप-यौवन सब परिवर्तनशील है। परिवर्तन पीड़ामय है।

आकर्षक ध्वनि उभरती रहती है।

नेपथ्य—**(गंभीर ध्वनि गूँजती हुई)** तब तुम जीवन की साधना करो ! शील, शान्ति और विराग को उपलब्ध किया है तुमने ! इस देह को समृद्ध करो।

सिद्धार्थ—**(ध्यानावस्था में)** मुझे निर्लिप्त जीवन की खोज करनी है। इससे भिन्न कुछ नहीं !

नेपथ्य—**(गंभीर गूँजती ध्वनि)** सिद्धार्थ, कल्पना करो। अपनी प्रेयसी यशोधरा के होते विकृत रूप की, कल्पना करो ! वह व्यथित हो उठी है। राजप्रासादों में भी सुख के साधनों को त्यागकर वह दुःखमय, व्यथामय जीवन भोग रही है। उसकी पीड़ा की कल्पना करो सिद्धार्थ।

सिद्धार्थ—**(ध्यानावस्था में)** मैंने नारी के भौतिक और पार्थिव रूप-सौंदर्य का परित्याग किया है। नारी के सौंदर्य, यशोधरा के प्रति मोह नहीं है मुझे ! विमोह मुझे पथ से विचलित नहीं कर सकता।

नेपथ्य—**(गंभीर गूँजती हुई ध्वनि)** क्या राहुल का विमोह भी नहीं है तुम्हें ?

सिद्धार्थ—**(ध्यानावस्था में ही)** नहीं ! सब पार्थिव रूप हैं। आदि और अन्त के बन्धन से विमुक्त रूप देख रहा

हूँ, उसका अध्यात्मिक रूप मुझे प्रकट हो चुका है।
सहसा वीणा के तीव्र स्वर सुनाई देने लगते हैं।
(**ध्यानावस्था में ही**) यह क्या है ? इस ध्वनि में विराग का, निवृत्ति का राग उठ रहा है।

नेपथ्य—(**गंभीर गूँजता स्वर**) मैं राग झंकृत करूँगा।
वीणा झंकृत होती है, ध्वनिपूरित लोक की सृष्टि होती है। यह क्रम कुछ देर तक चलता रहता है। किन्तु उसका अन्तिम मोड़ पर तार टूट जाता है तार टूटने की ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। उसके पश्चात् वीणा की ध्वनि मन्द से मन्दतर होती हुई डूब जाती है।

सिद्धार्थ—(**ध्यानावस्था में**) स्वर स्पष्ट नहीं ··स्वर स्पष्ट नहीं !
एक ज्योति-रेखा का प्रकाश दूरदूर तक फैल जाता है। एक सत्य उनके अन्तर में प्रतिध्वनि कर उठता है, इसी समय सिद्धार्थ का मुख-मण्डल देदीप्यमान हो उठता है।
(**ध्यानावस्था में**) धन्य ! धन्य ! उपकृत हुआ। समझ गया यह रहस्य। इसने मेरे हृदय की ग्रन्थि खोल दी है। न अति शिथिल न अति कठोर—मध्यम, केवल मध्यम। मध्यम मार्ग का आश्रय······मुझे मध्यवर्ती मार्ग अपनाना होगा। यही प्रकृति और निवृत्ति के बीच एक समवृत्ति है। योग और भोग के बीच का साम्य···मिल गया है···साम्य !
देवदत्त स्तम्भित होता है रम्भा की चेतना लौटती है।

देवदत्त—(**धीमीध्वनि**) रम्भा चलो, सिद्धार्थ पर तुम अधिकार नहीं कर सकतीं ! उस पर कोई अधिकार नहीं कर सकता ! सिद्धार्थ अविजित है, अजेय है।

रम्भा—(**स्वस्थ होती हुई धीमा स्वर**) आर्य ! क्या तपस्वी अब भी अचल है ?

देवदत्त—चलो रम्भा लौट चलो ! तपस्वी अटल है ।

दोनों अजातशत्रु के समीप लौट आते हैं ।

अजातशत्रु—राजकुमार देवदत्त

देवदत्त—युवराज का कथन सत्य निकला । सिद्धार्थ असाधारण तपस्वी है । उन्होंने काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, रसना, तृष्णा, रति, रुचि आदि पर विजय-लाभ किया है । आर्य सिद्धार्थ ने विश्व के महान् तत्त्व को पहचाना है । निःसन्देह तपस्वी सिद्धार्थ जगत् का कल्याण करेंगे ।

अजातशत्रु—चलो राजकुमार, चलो !

सबका प्रस्थान सर्वत्र प्रकाश फैलता है, सिद्धार्थ का मुख-मण्डल प्रफुल्लित हो उठता है । अभी तक वे ध्यान मग्न ही हैं । सहसा उनका मन आनन्दातिरेक से खिल उठता है । समस्त विश्व में अलोक भर जाता है ।

नेपथ्य—(**गम्भीर गूँजती हुई ध्वनि**) सिद्धार्थ ! तुम परम बुद्ध को प्राप्त हुए हो । सुख दुःख का निर्वाण ढूँढ़ लिया है तुमने ! विरह एवं मिलन का निर्वाण मिल गया है तुम्हें । तुम इन्द्रिय तथा मन का भी निर्वाण उपलब्ध कर चुके हो ।

बारम्बार प्रकाश बढ़ता है, फैलता है ।

ध्वनि—(**गम्भीर गूँजती हुई आदेश ध्वनि**) गौतम बुद्ध ! अब तुम्हें वही ज्ञान जगत् को देना है । मानव को अपने पंथ में दीक्षित करते हुए, बढ़ो । कल्याणमयी वाणी वसुन्धरा में व्याप्त हो जाय । बुद्ध ! उठो, शनैः शनैः तुम्हारी वाणी जन-जन का कल्याण करेगी । उठो ! जागृत हो ! देखो ! कोटि-कोटि मानव तुम्हारी ओर उत्कण्ठा-पूर्वक ध्यान लगाए हुए हैं । उसको भव-बन्धन से मुक्त करो !

सिद्धार्थ का ध्यान भंग होता है, जनसाधारण का कोलाहल बढ़ता हुआ मालूम होता है। संगीत-ध्वनियाँ सुनाई पड़ती हैं।

सिद्धार्थ—(गम्भीरतापूर्वक उठते हुए) ओं अमिताभाय ! बोधि सत्त्व उठ ! जन-जन को मार्ग-प्रदर्शन कर।

अमिताभ आशीर्वाद सूचक दक्षिण हाथ की अञ्जलि उठाते हैं, जनसमुदाय सामने आ-आकर नमन करता है। ओं अमिताभाय के स्वर गूँजते रहते हैं। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के समस्त शरीर पर दिव्य एवं तेजस्वी प्रकाश फैला रहता है।

●

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : पाँच

दिवस का तृतीय प्रहर :
काशी के निकट : मृगदाव वन-प्रदेश में कौण्डिन्य का आश्रम :

आश्रम की व्यवस्था चित्ताकर्षक है। वृक्ष और लताएँ दिखाई पड़ रही हैं। यज्ञ का धुँआ उठकर आकाश की ओर जा रहा है। तपस्वी कौण्डिन्य के समीप भद्रक, वप्र, अश्वजित् एवं महानाम तथा कुछ अन्य साधु एकत्रित हैं।

रुद्रक—(समीप आकर) गुरुदेव !

कौण्डिन्य—कहो वत्स।

रुद्रक—तपस्वी सिद्धार्थ के ज्ञान की चर्चा सब ओर छाये जा रही है।

कौण्डिन्य—सुना मैंने भी है वत्स, तपस्वी सिद्धार्थ पर चार आर्य सत्य स्पष्ट हुए हैं।

भद्रक—सिद्धार्थ ! हुँऽअ (घृणा का भाव) वह रस-लोलुप साधु ! वह तपस्वी पाखण्डी है।

कौण्डिन्य—वत्स भद्रक !

भद्रक—गुरुदेव, सिद्धार्थ साधु-सम्प्रदाय के लिये कलंक है।

महानाम—उस ढोंगी साधु से हमें कोई प्रयोजन नहीं। युवतियों का सम्पर्क ! छिः-छिः कहता था अन्न नहीं खाऊँगा और जब तरुण-देवियाँ भोजन लेकर आई तो किस आनन्द से पा रहा था। ढोंगी सिद्धार्थ !

अश्वजित्—हमें उसके सम्पर्क से दूर रहना चाहिये।

कौण्डिन्य—(गम्भीरतापूर्वक) शिष्यो, यह उचित नहीं। हमने सुना है उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ है। यथार्थ के सम्मुख भ्रम त्यागना ही उचित है।

वप्र—गुरुदेव सुनी-सुनाई चर्चा पर विश्वास नहीं कर सकते !

कौण्डिन्य—एक बार हम उनका उपदेश सुने तो ! यदि उसमें कुछ सत्यता है तो ग्रहण करें अन्यथा हमारा अपना मार्ग तो है ही (**सोचकर**) हम उन्हें निमंत्रण देंगे ।

एक साधु का प्रवेश

साधु—गुरुदेव तपस्वी सिद्धार्थ इधर ही आ रहे हैं। उन्हें हमारे आश्रम का पता मिल गया है ।

कौण्डिन्य—गुरुदेव ने हमारे आश्रम का पता अवश्य पूछा होगा । हम उनका साहचर्य बिना कहे ही छोड़ आये थे । (**उत्सुकता प्रदर्शनकर**) मैं स्वयं लाऊँगा, उन्हें ।

भद्रक—गुरुदेव, हमारा आश्रम भ्रष्ट हो जायगा ।

कौण्डिन्य—भ्रम का निवारण करना हमारा कर्त्तव्य है । (**उठकर**) चलो, बान्धवो ! हमें तपस्वी सिद्धार्थ का आतिथ्य करना चाहिये ।

नेपथ्य—अभिताभ की जय ! तथागत गौतम बुद्ध की जय ! तपस्वी सिद्धार्थ की जय

जन कोलाहल बढ़ता है ।

कौण्डिन्य—(**विस्मयपूर्वक**) बुद्धत्व को प्राप्त हुए हैं, गुरुदेव । चलो, चलो...

सब उत्सुकतापूर्वक प्रस्थान करने को तत्पर होते हैं कि जन-समूह के साथ गौतम बुद्ध आश्रम में प्रवेश करते हैं ।

(**आगेबढ़कर**) पधारिये, पधारिये तपस्वीराज ! तथागत की जय हो !

सिद्धार्थ—वत्स ! कौण्डिन्य इस आश्रम के अधिष्ठाता हैं ! (**मन्द स्मित**) वप्र, भद्रक, अश्वजित् और महानाम सब यहीं हैं !

कौण्डिन्य तथागत के मुख की ओर एकटक देखते हैं, उनका तेजस्वी मुख देखकर

कौण्डिन्य—(**विनम्रतापूर्वक**) गुरुदेव, क्षमा करें, हमसे भयानक अपराध हो गया है। (**चरणों में गिरकर**) गुरुदेव क्षमा… !

सिद्धार्थ—(**उठाकर छाती से लगाकर**) भ्रम अनेक त्रासों का मूल है वत्स।

दूसरे सब शिष्य चरणों में गिरते हैं बुद्ध उन्हें उठाते हैं।

कौण्डिन्य—(**संकेत कर**) विराजिये गुरुदेव !

सिद्धार्थ एक ऊँचे आसन पर बैठते हैं।

सिद्धार्थ—विगत को भूल जाओ, बन्धुओ ! व्यथा की आवश्यकता नहीं है। मुझे ज्ञान प्राप्त हुआ है, उसका उपदेश देना है। जिस अमृत का पान मैंने किया है, उसे तुम सबको और फिर वसुन्धरा को पिलाना है।

कौण्डिन्य—(**विनयपूर्वक**) गुरुदेव !

सिद्धार्थ—जन्म में दुःख है, जरा-व्याधि एवं मृत्यु में दुःख है। अप्रिय के साहचर्य में भी दुःख छिपा हुआ है और प्रिय के विछोह में भी दुःख का निवास है। दुःख और असन्तोष का मूल आधार तृष्णा है। तृष्णा की निवृत्ति होने पर ही दुःख का विरोध होता है। इस दुःख की निवृत्ति के आठ उपाय हैं वत्सो।

कौण्डिन्य—(**सविनय**) प्रकाशित करें गुरुदेव !

सिद्धार्थ—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक-वाणी, सम्यक्, कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि !

सब विस्मयपूर्वक देखते हैं। एक आनन्द रस की सृष्टि होने लगती है।

कौण्डिन्य—गुरुदेव ! (**शिर हिलाकर**) दुःख की निवृत्ति के आठ उपाय हैं !

सिद्धार्थ—अहं, बुद्धि का विनाश अनिवार्य है। जिस प्राणी को यह लाभ नहीं प्राप्त हुआ है उसे शान्ति नहीं मिल

सकती। अहंकार ही समस्त पापों की जड़ है। अहंकार ही समस्त भ्रान्तियों का मूल कारण है। जिस प्रकार प्रचण्ड भास्कर को मेघ का एक खण्ड ढँक लेता है, उसी प्रकार अहंकार सत्प्रवृत्तियों के विश्व व्यापक आनन्द को तिरोहित कर देता है।

तपस्वी सिद्धार्थ के पाँचों शिष्य स्वीकार सूचक मुद्रा प्रकट करते हैं।

कौण्डिन्य—गुरुदेव की वाणी से अमृत की वर्षा हुई है। इस अमृत फल की प्राप्ति से हम सब अमरता को प्राप्त होंगे।

सिद्धार्थ—प्रभो तुम्हें शक्ति दें।

कौण्डिन्य—भन्ते! इस ज्ञान-धारा को प्रवाहित करने के लिये हम सब प्रस्तुत हैं।

सब—हाँ, गुरुदेव, हम सब ज्ञान-धारा को विश्व में फैला देंगे।

कौण्डिन्य—**(उच्चस्वर)** अमिताभ की जय! गौतम बुद्ध की जय! **उपस्थित समुदाय में जय-निनाद भर जाता है। तथागत की गम्भीरता बढ़ती जाती है। उठकर वे चलने लगते हैं, उनके पीछे उनके शिष्य तथा जन-समूह। नेपथ्य में जय-घोष निनादित होता रहता है।**

०

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : छह

मध्याह्न के पश्चात् :
राजगृह : यष्टिवन मे एक विशाल सभास्थल :

विशाल प्रांगण में एक सभा-मण्डप बनाया गया है। आकर्षक मंच पर एक ऊँचा आसन बनाया गया है। ऊँचे आसन के नीचे एक बड़ा स्थान है. यहाँ तपस्वी काश्यप के पास मगध-सम्राट्, उनके अमात्यगण उत्कण्ठा में डूबे हुए बैठे हैं। प्रांगण में जन-समूह बैठा है। दूर पर अमिताभ की जय ! तथागत शाक्यमुनि की जय-जयकार सुनाई देती है। थोड़ी देर में तथागत बुद्ध अपनी प्रमुख शिष्य-मण्डली के साथ सभा-स्थल में पधारते हैं। जय-निनाद बढ़ता है। तथागत गम्भीर मुद्रा में गेरुए वस्त्र धारण किये, आशीर्वादसूचक हाथ उठाये मंच की ओर बढ़ते है। मंच पर बैठे व्यक्ति सविनय मुद्रा में खड़े हो जाते हैं। तथागत सबसे ऊपर के आसन पर बिराजते हैं उनके शिष्य नीचे वाले स्थान पर बैठते है। वातावरण में जयनाद पुनः प्रबल रूप में गूँज उठता है। तथागत का हाथ उठते ही वातावरण में शान्ति छा जाती है।

सिद्धार्थ—बन्धुओ ! चारोंओर अग्नि-शिखाएँ प्रज्ज्वलित हो रही हैं। मानव की विचलित इन्द्रियाँ उस ज्वाला में जल रही हैं। तृष्णा, मोह और द्वेष की अग्नि में सारा विश्व भस्मसात हो रहा है। इन्द्रियाँ एवं कामना का सुख अस्थाई है। मनुष्य की आत्मा भँवरजाल में फँसी हुई है। आत्माएँ छटपटा रही हैं। उसमें जब तक आर्यसत्य की प्रतिष्ठा नहीं होती उसे इसी अवस्था में पड़ा रहना होगा। मनुष्य निर्वाण-पद का अधिकारी कैसे होगा ? जन्म और मृत्यु के चक्र से उसे मुक्ति कैसे मिलेगी ? धर्म के

अष्टांग-मार्ग पर चलने से ही तृष्णा का अन्त होगा ।

काश्यप— (**उठकर विनय मुद्रा में**) तथागत की जय हो ! आपने सत्य पा लिया है । जीवन और मरण का हेतु खोज लिया है । तथागत, आपका मंत्र मुझे मान्य है । मैं बौद्धधर्म की दीक्षा लेने को तत्पर हूँ । जय अभिताभ !

सिद्धार्थ—महातपस्विन् काश्यप ! तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा विवेक, तुम्हारी विद्वत्ता समस्त आर्यवर्त्त में व्याप्त है । मैं ऐसे महान् विद्वान् तपस्वी को सर्वप्रथम बौद्धधर्म में दीक्षित कर धर्म के गौरव में वृद्धि करूँगा ।

काश्यप—(**सविनय**) उपकृत हूँ तथागत !

विम्बसार—(**उठकर**) अभिताभ की जय हो ! तथागत के बताये महान् रूप का मैंने मनन कर लिया है । अष्टांग मार्ग का मुझे ज्ञान हो गया है, तथागत का बोध अंधकार से ढँके मार्ग में प्रकाश-स्तम्भ है ।

सिद्धार्थ—(**गम्भीरतापूर्वक**) राजन् !

विम्बसार—(**सविनय**) संघ में मेरी प्रीति है । अमिताभ की जय ! **उपस्थित जन-समूह मगध-सम्राट् का अनुकरण कर सभा-मण्डप को गुँजा देता है । वातावरण शांत होता है, उसी समय देवदत्त तथा नर्त्तकी रम्भा तथागत के समीप पहुँचते हैं ।**

सिद्धार्थ—आओ, बन्धु देवदत्त ! कुशल से हो ?

देवदत्त—अमिताभ की जय हो ! (**मस्तक नवाकर**) प्रभु मेरा अपराध क्षमा कर दें । मेरा जीवन कलुषित रहा है, प्रतिहिन्सा की भावना ने मेरे विकास का मार्ग रोक दिया है । मैं गहरे गर्त्त में जा पड़ा हूँ । तथागत की वाणी से मुझ पथ-भ्रष्ट को भी सन्मार्ग मिले । मैं आपकी शरण हूँ ।

सिद्धार्थ—मिलेगा सन्मार्ग ! देवदत्त, तुम्हारी धर्म में गति हो !

देवदत्त—अमिताभ, प्रतिहिंसा की ज्वाला में मैं जलता रहा रहा हूँ। तथागत के बोध से मुक्त-अज्ञानी को भी सत्य का सूत्र मिल गया है। मैं बुद्ध की शरण हूँ। मैं धर्म्म की शरण हूँ, मैं संघ की शरण हूँ।

नेपथ्य में दूर पर—बुद्धं शरणं गच्छामि !
धम्मं शरणं गच्छामि !
संघ शरणं गच्छामि !!
स्वर शांत होता है।

रम्भा—(**सविनय**) आर्य तथागत मैं भी संघ में प्रवेश चाहती हूँ। मेरा भी अपराध क्षमा करें, प्रभो।

सिद्धार्थ—तुम नारी ! तुम्हें पहचाना नहीं देवि !

रम्भा—वैशाली की नगर-वधू—राजनर्तकी प्रभो ! तथागत की तपस्या खण्डित करने की चेष्टा की थी ! रम्भा का रूप धारण कर।

सिद्धार्थ—ओह ! (**मन्दहास्य**) देवि, आम्रपाली !

रम्भा—दर्प, अंहकार मोह से दूर हुई हूँ, आर्य तथागत बुद्ध की शरण आई हूँ।

सिद्धार्थ - निःसन्देह तुम्हारा अधिकार तुम्हें मिलेगा। पश्चाताप के मंथन से हृदय निर्मल हो जाता है।

अपार जनसमूह अमिताभ की जय-जयकार करता है। नेपथ्य में बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि तथा संघं शरणं गच्छामि का घोष उभरता है।

o

यवनिका

अंक : तीन :—दृश्य सात :

प्रभात के पश्चात् :
कपिलवस्तु : राज-पथ :

कपिलवस्तु का राजपथ तथा वीथिकाएँ आदि सजी हुई हैं। स्थान-स्थान पर तोरणद्वार सजाये गये हैं। राजपथों पर श्वेत पताकाएँ फहरा रही हैं। सर्वत्र आनन्द और हर्ष की हिलोरें उठ रही हैं। सुबाहु तथा सुभद्र नागरिक प्रवेश करते हैं।

सुभद्र—युवराज सिद्धार्थ पधार रहे हैं।

सुबाहु—कपिलवस्तु में भी अनर्थ खड़ा होगा क्या ?

सुभद्र—(**विस्मयपूर्वक**) सुबाहु, अनर्थ !

सुबाहु—अनेक युवक सिद्धार्थ के संघ में चले जायँगे ! घर-घर में विरह के गीत गाये जाने लगेंगे। सृष्टि का लोप कराकर ही छोड़ेगा तथागत का मन्त्र !

एक भिक्षु—(**एक भिक्षु प्रवेश कर**) भन्ते (**जैसे सुबाहु का कथन उसने सुन लिया हो**) मिथ्या धारणाएँ न बनायें। तथागत अमिताभ संयम, धर्म, निष्ठा और परित्राण की उपलब्धि के मार्ग का प्रचार करेंगे। उससे आत्मा को तुष्टि मिलेगी।

एक कापालिक का तीव्रगति से प्रवेश

कापालिक—(**सदर्प**) क्या कह रहे हो नागरिक ? यह भिक्षु... (**तिरछी दृष्टि डाल कर**) यह भिक्षु कौन है ?

सुभद्र—महात्मन् गौतम बुद्ध के संघ का भिक्षु है।

कापालिक—(**उच्च स्वर**) पाखण्डी ! दूर हो ! हमारी मंत्र-साधना में पथ-भ्रष्ट बुद्ध (**उच्च अट्टहास के पश्चात्**) बुद्ध ! संसार की मंगल कामना चाहता है ! जानता है मंगल देव का कौन है ?—शिव, महादेव ! और···

और···क्या उस पाखण्डी ने शिव का वरदान प्राप्त किया है धूर्त कहता फिरता है, संसार का मंगल करूँगा (**उच्च हास्य कर**) संसार का मंगल···(**पुनः अट्टहास्य कर**) संसार का मंगल ! दूर हट, भिक्षु, नास्तिक के अन्ध-अनुयायी, इस भोलीभाली जनता को भ्रम में मत डाल ! जय शक्ति ! मैं···मैं कल ही उस प्रपंची का भण्डाफोड़ कर दूँगा ।

भिक्षुक शान्त मुद्रा तथा नागरिक भयग्रस्त खड़े रह जाते हैं ! कापालिक का प्रस्थान ।

भिक्षु—देखा तुमने तांत्रिक सिद्धि का स्वरूप, जो अपनी मनोवृत्तियों को वशीभूत नहीं कर सकता उस अहं को नष्ट करने आज तथागत करुणा का सन्देश देने के लिये भगीरथी गंगा के समान कपिलवस्तु में पदार्पण कर रहे हैं ।

सुबाहु—यह नवीन धर्म अत्यन्त विघातक प्रतीत होता है। लोक कल्याण की भावना में विनाश का बीज !

दो नागरिकों का आगमन भिक्षुक का प्रस्थान

बिलोचन—अरे, देखा ! वीतराग कपिलवस्तु आ रहा है । राज-प्रासाद के सुख-भोग की कामना जागृत हो उठी है !

मणिभद्र—ऐसा नहीं है बन्धु !

विलोचन—ढोंगी यशोधरा के रूप का मोह नहीं छोड़ सका । बुद्धं शरणं गच्छामि (**हँसकर**) पाखण्डी तो यशोधरा की शरण जा रहा है, और मूर्ख बुद्ध की शरण ढूँढ़, रहे हैं- (**हँसता है**) धर्म की शरण आ-हा-हा संघं शरणं गच्छामि ! बुद्धं शरणं

०

यवनिका

अंक : तीन—दृश्य : आठ

सूर्यास्त से पूर्व :
कपिलवस्तु : यशोधरा के प्रासाद के सामने तोरण-द्वार :

तोरणद्वार भलीप्रकार सजाया गया है। जहाँ-तहाँ पुष्प-मालाएँ झूल रही हैं। जन-समूह एकत्रित हो रहा है। राजकर्मचारी व्यस्त हैं। तोरणद्वार से दाहिनी ओर यशोधरा का निवास है। बाहर के भाग में शाक्येन्द्र, राज-महिषी प्रजावती तथा अन्य राजपुरुष उत्सुकतापूर्वक तथागत के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं प्रतिहार का प्रवेश।

प्रतिहार—(**नतमस्तक**) शाक्येन्द्र की जय हो ! देव, युवराजश्री ने रथ लौटा दिया है।

शुद्धोदन—(**विस्मयपूर्वक**) रथ-यान लौटा दिया ! छन्दक कहाँ है ?

प्रतिहार—वहीं रह गये हैं। युवराजश्री ने कहा है, वाहन का उपभोग छोड़ दिया है। तथागत पदयात्री हैं !

प्रजावती तथा शाक्येन्द्र व्यथित हो उठते हैं।

शुद्धोदन—(**व्यथापूर्वक**) युवराज ने क्या नहीं त्यागा है। प्रतिहार, कहाँ है युवराज ?

प्रतिहार—(**नतमस्तक**) आम्रवाटिका के पास सहस्रों भिक्षुओं के साथ।

शुद्धोदन—जाओ प्रतिहार !

नतमस्तक एक ओर प्रस्थान

प्रजावती—अब तो सत्य पालिया है युवराज ने अपने प्रासाद में···

शुद्धोदन—महादेवी, हमें शंका है, सिद्धार्थ प्रासाद में निवास करेंगे !

प्रजावती—(**चिन्तित होती हुई**) यशोधरा की तपस्या क्या यों ही जायगी ?

शुद्धोदन—(**व्यथापूर्वक**) युवराज का भिक्षुवेश।

दूर पर जनरव उठता है।

प्रजावती—प्रतीत होता है युवराज आ गये ! (**राहुल को पुकारती हुई**) राहुल ! राहुल !

राहुल—(**सामने आकर**) क्या पिताजी आगये ?

शुद्धोदन—हाँ, आया ही समझो। वह देखो—(**संकेत**) अपार जन-समूह से घिरे चले आ रहे हैं। (**व्यथा प्रदर्शनकर**) नंगे शिर, नंगे पैर, हाथ उठाये…जनजन को आशीर्वाद देते चले आ रहे हैं।

राहुल—मैं उनके चरणों की रज लगाऊँगा अपने ललाट पर।

प्रजावती—मेरे लाल, युवराज तुम्हें देखकर गद्‌गद् हो उठेंगे।

राहुल—मैं पिताजी से पूछूँगा, क्या सभी पिता अपने पुत्रों को सोते में छोड़ जाते हैं।

शुद्धोदन—(**अश्रुओं से भरे नेत्रों से**) आओ, कुमार मेरे पास आओ।

प्रजावती, राहुल तथा शाक्येन्द्र कुछ आगे बढ़ते हैं।

जनरव—शाक्येन्द्र की जय ! युवराज की जय !!

भिक्षुवर्ग—तथागत गौतम बुद्ध की जय !

शुद्धोदन—(**समीप से**) आओ युवराज !

सिद्धार्थ—(**पात्र सम्मुख करते हुए**) शाक्येन्द्र, तथागत का वंशज गौतम बुद्ध भिक्षान्न का इच्छुक है।

प्रजावती तथा शाक्येन्द्र अवाक् रह जाते हैं।

शुद्धोदन—(**व्यथा भार से दबकर**) कपिलवस्तु का युवराज भिक्षान्न द्वारा जीवन व्यतीत करेगा ? हा, दैव !

सिद्धार्थ—शाक्येन्द्र ! भिक्षा मिले !

शुद्धोदन—इतनी भयंकर विडम्बना !

सिद्धार्थ—तथागत के वंश की परम्परा का निर्वाह करें !

प्रजावती—(**व्यथित होती हुई**) आर्यपुत्र, युवराज की इच्छा का पालन करें ! (**प्रतिहारियों को सम्बोधन करती**

हुई) जाओ, प्रतिहारियो, फल, स्वादिष्ट भोजन-पदार्थ शीघ्र ले आओ !

प्रतिहारियाँ द्रुतगति से प्रस्थान करती हैं।

सिद्धार्थ—(**भिक्षुओं से**) बान्धवो, तथागत का उपदेश सुनने का लाभ देवि यशोधरा नहीं उठा रही हैं। वह नहीं आईं। उन्हें निद्रावस्था में ही छोड़कर चला गया था। सम्भवतः अब भी वे निद्रा में होंगी ! उनके विवेक को जगाना है।

राहुल—पिताजी, माताजी भीतर हैं।

सिद्धार्थ—वत्स मुझे (**गम्भीर मुद्रा**) ही उनके पास पहुँचना होगा।

राहुल—तो चलिये भीतर।

इसी बीच प्रतिहारियाँ फलादि लेकर आती हैं। प्रजावती उन पदार्थों को आगे बढ़ाती हैं, सिद्धार्थ उसे स्पर्श करते हैं तथा भिक्षुगण उसे ग्रहण करते हैं।

सिद्धार्थ—(**राहुल के प्रति**) वत्स, तुम मेरे भिक्षा-पात्र में कुछ नहीं डालोगे ?

राहुल—मैं तो आपका पुत्र हूँ, राहुल ! मुझे बहुत छोटा छोड़कर चले गये थे।

सिद्धार्थ—राहुल चलो मैं चलता हूँ, कहाँ है तुम्हारी माता ?

राहुल—चलो, (**संकेत करता हुआ तथागत का हाथ पकड़कर**) चलो, मातेश्वरी रात-दिन रोती रहती हैं।

प्रजावती, शुद्धोधन, छन्दक, राहुल आदि के साथ तथागत कुछ बढ़ते हैं, यशोधरा उठकर सम्मुख आती है।

सिद्धार्थ—(**कमण्डलु बढ़ाते हुए**) देवि भिक्षा दो ! भिक्षुक तुम्हारे द्वार आया है।

भिक्षुगण, धम्मं शरणं गच्छामि का स्वर निनादित करते हैं। सर्वत्र करुणा व्याप्त हो जाती है। यशोधरा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होती हुई सिद्धार्थ के चरणों की ओर बढ़ती है, सिद्धार्थ पीछे हट जाते हैं।

देवि—तथागत का भिक्षापात्र खाली है ।

यशोधरा—(**अश्रुपूरित नेत्रों से गद्गद् होती हुई**) देव मेरे पास अब बचा ही क्या है ?

सिद्धार्थ—देवि का त्याग प्रशंसनीय है । तथागत त्यागशीला से भिक्षा चाहता है ।

यशोधरा—(**सव्यथा**) आर्य !

सिद्धार्थ—देवि, दो दान !

यशोधरा—(**राहुल के प्रति**) राहुल तुम भी प्राप्त करो अपना भाग ! तुम अधिकारी हो !

राहुल—पिताजी मेरा अधिकार मुझे मिले ?

सिद्धार्थ— (**सम्बोधन कर**) सारिपुत्र !

सारिपुत्र—(**सामने आकर**) तथागत की जय !

सिद्धार्थ—सारिपुत्र राहुल को बौद्ध-धर्म में दीक्षित करो ।

चारों ओर व्यथा-करुणा का साम्राज्य छा जाता है ।

सारिपुत्र—आओ राहुल ! तुम्हें बौद्ध-धर्म में प्रवेश करने का अधिकार मिल गया है ।

शुद्धोदन—(**व्यथित होकर**) सिद्धार्थ, यह क्या अनर्थ कर डाला ! राहुल बालक है । उसके अभिभावक तुम नहीं रहे ।

सिद्धार्थ—शाक्येन्द्र, भविष्य में किसी बालक को बिना उनके अभिभावक की इच्छा जाने संघ में प्रविष्ठ नहीं करूँगा ।

यशोधरा—तथागत की जय हो, मुझे दीक्षा मिले । मैं भी संघ की शरण जाऊँगी ।

तथागत के भिक्षा-पात्र में भिक्षा पदार्थ डालती है ।

शुद्धोदन—(**व्यथित होकर**) यह कैसा विनाश देख रहा हूँ ! सर्वनाश का पथ ।

सिद्धार्थ—ममता, मोह का त्याग करें राजन् ! सत्य-धर्म का पालन ही जीवन का निर्वाण-पद प्रदान करता है ।

जनसमूह—(**उच्च स्वर**) तथागत बोधिसत्त्व की जय !

समवेतस्वर—बुद्धं शरणं गच्छामि !
धम्मं शरणं गच्छामि !
संघं शरणं गच्छामि !

शुद्धोदन—तथागत की जय ! (**सोचकर**) मुझे भी अपने संघ में लें ।

सिद्धार्थ—सारिपुत्र ! शाक्येन्द्र, तथा देवि यशोधरा संघ में प्रविष्ट होना चाहते हैं ।

सारिपुत्र—आज्ञा भन्ते !

समवेतस्वर—संघं शरणं गच्छामि ।

नन्द अश्रुपूरित नेत्रों से आकर तथागत के चरणों में गिरते हैं, सिद्धार्थ उसे उठाते हैं ।

सिद्धार्थ—बांधव अब तक कहाँ छिपे थे ?

नन्द—(**व्यथित होकर**) हृदय पर पत्थर रख कर आया हूँ ।

सिद्धार्थ—तुम आना मेरे पास, तुम्हें सन्मार्ग का अपनी अमूल्य निधि का दान दूँगा ।

नन्द—(**विलखतासा**) आर्यश्रेष्ठ !

सिद्धार्थ—तथागत का मध्यम-मार्ग अपना कर आनन्द प्राप्त करना है ।

सिद्धार्थ लौटते हैं उपस्थित जन उनका अनुगमन करता है । प्रजावती खड़ी-खड़ी अवाक् होकर देखती रहती है ।

जनसमूह—तथागत की जय ! बोधिसत्व की जय !

समवेतस्वर—बुद्धं शरणं गच्छामि !
धम्मं शरणं गच्छामि !
संघं शरणं गच्छामि !

सबका प्रस्थान

०

समाप्त

कुछ उपयोगी प्रश्न

1. तथागत कौन थे ? उनके विषय में नाटक के आधार पर तीस पंक्तियाँ लिखिये !
2. तथागत की कथा संक्षेप में लिखिये !
3. तथागत सिद्धार्थ का चरित्र-चित्रण कीजिये ।
4. तथागत पर निम्न दृष्टि से अपने विचार प्रकट कीजिये—
   पात्र, देशकाल, कथोपकथन ।
5. निम्नांकित पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ संक्षेप में दीजिये शुद्धोदन, प्रजावती, छन्दक, देवदत्त ।
6. नगर-भ्रमण के समय सिद्धार्थ ने क्या देखा जिसके कारण उन्हें गृह-त्याग के लिये विवश होना पड़ा ?
7. नाटक की कथावस्तु के आधार पर बताइये, निमित्त-दर्शन एक षड्-यंत्र था । इस षड्यंत्र के नायक कौन थे ?
8. तथागत रंगमच की दृष्टि से कहाँ तक सफल हो सकता है ?
9. तथागत नाटक की सफलता-असफलता पर अपनी धारणा प्रकट कीजिये ।
10. संकलन त्रय, कथा-वस्तु और रस-निष्पत्ति की दृष्टि से तथागत कहाँ तक सफल है ?
11. तथागत नाटक में संघर्ष कहाँ उभरा है ? बताइये ।
12. सिद्धार्थ ने अहिंसा का पाठ कैसे सीखा ? क्या तथागत नाटक हमें अहिंसा का सन्देश देता है ?
13. तथागत में सांस्कृतिक परम्परा का निर्वाह कहाँ तक हुआ है ?
14. तथागत में तत्कालीन युग के विचार एवं आदर्शों का चित्रण हुआ है । स्पष्ट कीजिये ।
15. तथागत की भाषा और शैली पर अपना मन्तव्य प्रकट कीजिये ।
16. तथागत की दार्शनिकता पर आपकी क्या राय है ?
17. तथागत का मार-विजय अपनी भाषा में लिखिये !
18. तथागत के युग में कौन-कौन सी कुरितियाँ वर्तमान थीं ?
19. तथागत में प्रारम्भ, प्रत्याशा, प्रयत्न आदि अवस्थाएँ मिलती हैं, बताइये।
20. नाटक के कौन-कौन से तत्व हैं, उल्लेख कीजिये ।

———